

# विद्रोह के केंद्र में दिन और रातें

जाने-माने मानवाधिकार कार्यकर्ता और ईपीडब्ल्यू के सलाहकार संपादक गौतम नवलखा तथा स्वीडिश पत्रकार जॉन मिर्डल कुछ समय पहले भारत में माओवाद के प्रभाव वाले इलाकों में गए थे, जिसके दौरान उन्होंने भाकपा माओवादी के महासचिव गणपति से भी मुलाकात की थी। इस यात्रा से लौटने के बाद गौतम ने यह लंबा आलेख लिखा है, जिसमें वे न सिर्फ ऑपरेशन ग्रीन हंट के निहितार्थों की गहराई से पड़ताल करते हैं, बल्कि माओवादी आंदोलन, उसकी वजहों, भाकपा माओवादी के काम करने की शैली, उसके उद्देश्यों और नीतियों के बारे में भी विस्तार से बताते हैं। पेश है हाशिया पर इस लंबे आलेख का हिंदी अनुवाद।

जब माओवादियों के खिलाफ हर तरह के अपशब्द और कुत्साप्रचार का इस्तेमाल किया जाता है तो झूठ और अर्धसत्य को भी पंख लग जाते हैं और इसकी चीरफाड़ के बहाने उनका दानवीकरण किया जाता है। बुद्धिजीवी समुदाय तथ्य का सामना करने से बचता है। फिर भी हम यथार्थ को उसके असली रूप में जानने का प्रयास करते हैं और कुछ मूलभूत सवालों का उत्तर तलाश करते हैं- यह युद्ध क्यों? जिन्हें भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए 'सबसे बड़ा खतरा' समझा जाता है, वे लोग कौन हैं? उनकी राजनीति क्या है? वे हिंसा को क्यों जायज़ ठहराते हैं? वे अपने 'जनयुद्ध', अपने राजनीतिक लक्ष्य और अपने बारे में किस तरह की धारणा रखते हैं? अपने मजबूत जंगली क्षेत्रों से बाहर की दुनिया में छलांग लगाने के बारे में वे क्या सोचते हैं?

माओवादियों को दानव के रूप में दिखाए जाने की प्रक्रिया के खिलाफ उन्हें मानव के रूप में जानने समझने और माओवादियों के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी लेने की इच्छा (सिर्फ किताबों, दस्तावेजों, बातचीत के जरिए ही नहीं बल्कि उनके बीच जाकर और उनसे मुलाकात करके ) विगत कई वर्षों से मेरे दिमाग में निर्मित हो रही थी। दो बार मैं इस यात्रा के काफी करीब पहुंच गया था। पहली बार मुझे दो नवजवान पत्रकारों ने धोखा दे दिया और नियत समय और स्थान पर नहीं आए। दूसरी बार बहुत कम समय की नोटिस पर मैं अपने आप को तैयार नहीं कर सका। यह तीसरा अवसर था और मैं इसे गंवाना नहीं चाहता था। कुल मिलाकर यह यात्रा सम्पन्न हुयी और मैंने स्वीडेन के लेखक जॉन मिर्डल के साथ जनवरी 2010 में सीपीआई माओवादियों के गुरिल्ला जोन (जहां वे अपनी जनताना सरकार या जन सरकार चलाते हैं ) में दो सप्ताह गुजारे। इस दौरान हमने देखा, सुना, पढ़ा और काफी बहसों की। यद्यपि 'गुरिल्ला जोन' अभी भी सरकार और विद्रोहियों के बीच संघर्ष और इस पर नियंत्रण की लड़ाई में फंसा है लेकिन यह भी सच है कि इस क्षेत्र से भारतीय राज्य को पीछे हटना पड़ा है और अब वह अपने प्राधिकार को पुनः स्थापित करने के लिए सैन्य शक्ति का इस्तेमाल कर रहा है।

## भूमिका

कहते हैं, युद्ध का सबसे पहला शिकार सच होता है। अतः, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि भारत सरकार इस तथ्य से ही इंकार करती है कि वह सीपीआई (माओवादी) के खिलाफ युद्ध चला रही है! बल्कि उनकी तरफ से यह कहा जाता है कि वे नागरिक प्राधिकार फिर से स्थापित करने के लिए केवल 'पुलिस कार्यवाई' चला रहे हैं। पुलिस कार्यवाई कहने से दिमाग में जो तस्वीर उभरती है वह लाठी लिए उस सिपाही की होती है जो अशांति की स्थिति में व्यवस्था बनाने का प्रयास कर रहा होता है। जबकि सच यह है कि जंगल युद्ध में विशेष रूप से

प्रशिक्षित अर्धसैनिक बलों की 75 बटालियन वहां नियुक्त की जा चुकी है और इनके साथ हैं 100 से अधिक राज्य सशस्त्र पुलिस बलों की बटालियन, भारतीय रिजर्व बटालियन और विशेष पुलिस अधिकारी (एसपीओ)। यह सभी भारी हथियारों से लैस हैं।<sup>i</sup> इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय गृह मन्त्री पी चिदम्बरम का कहना है कि भारत सरकार को माओवादियों के खिलाफ "जितना आवश्यक है" उतना बल इस्तेमाल करने का "वैधानिक अधिकार" है। (टाइम्स ऑफ इन्डिया, 13 मार्च 2010)। माओवादी गुरिल्लाओं के प्रभावक्षेत्र वाले इलाके में अभूतपूर्व नियंत्रण व्यवस्था लागू है जो लोगों एवं समान की आवाजाही को नियंत्रित करती है। वहां ऐसा लगता है कि है कि हम किसी दूसरे देश में जा रहे हैं। जब तक लोगों के पास एसपी द्वारा हस्ताक्षरित पहचान पत्र नहीं होता, वे न तो उस इलाके में घुस सकते हैं न ही बाहर निकल सकते हैं। जहां तक समानों की आवाजाही का सम्बन्ध है इसे भी काफी सीमित कर दिया गया है। साप्ताहिक बाजारों को स्थानीय सुरक्षा कैम्पों में स्थानान्तरित कर दिया गया है। यहां प्रत्येक को अपना रजिस्ट्रेशन कराना पड़ता है, जिनके लिए राशन चाहिए उनकी लिस्ट पेश करनी होती है। इसके बाद उन्हें उतना ही राशन लेने दिया जाता है जो उनके लिए महज सप्ताह भर के लिए ही हो पाता है। पहले लोगों को साप्ताहिक हाट में पहुंचने के लिए कुछ घंटे चलना पड़ता था लेकिन अब उन्हें पूरा दिन और कभी कभी दो दिन चलना पड़ता है क्योंकि उन्हें इस दौरान कई चेकपोस्ट, कैम्प में रजिस्ट्रेशन व झोले की तलाशी का सामना करना पड़ता है और पुराने स्थान की बजाय और दूर जाना पड़ता है।

माओवादियों पर यह युद्ध इसलिए नहीं है कि वे मौजूदा भारतीय राज्य को उखाड़ फेंकना चाहते हैं, और जिसके लिए वे लगभग आधी शताब्दी से लगे हुए हैं<sup>ii</sup>। उनकी अपनी स्वीकारोक्ति के अनुसार, अभी सफल होने में 50-60 साल और लगेंगे। साथ ही उनकी सैन्य ताकत के बारे में प्रधानमंत्री के शब्दों में कहें तो माओवादियों के पास बहुत "साधारण योग्यताएं" हैं। कुल मिलाकर इसका उनकी अर्थहीन हिंसा से कुछ लेना देना नहीं है। अर्धसैनिक बलों द्वारा की गई विभिन्न स्तर की गलतियों की जिम्मेदारी लेने में उनका रिकार्ड बहुत ही खराब है। इसके अलावा तथ्य यह भी है कि 'सत्ता हस्तांतरण' के 62 सालों बाद भी जनता का 80 प्रतिशत हिस्सा 20 रु प्रतिदिन या उससे कम पर गुजर बसर कर रहा है। वहीं सबसे धनी 100 परिवारों की कुल आय देश के जीडीपी का 25 प्रतिशत है। ये तथ्य हमें भारतीय शासकवर्ग की जनता के जीवन और स्वतन्त्रता के प्रति प्रतिबद्धता के बारे में संदेह करने के लिए बाध्य करते हैं।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे हिसाब से 'ऑपरेशन ग्रीन हण्ट' इस लिए चलाया जा रहा है क्योंकि माओवादी मुख्यतः आदिवासी क्षेत्रों में खनिज और खनिज आधारित उद्योगों के लिए किये गये सैकड़ों 'मेमोरेण्डम ऑफ अन्डरस्टैंडिंग' के क्रियान्वयन में जबरदस्त प्रतिरोध पैदा कर रहे हैं और इन क्षेत्रों में उन्हें जनता का महत्वपूर्ण समर्थन भी हासिल है।<sup>iii</sup> बिना इस प्रतिरोध को कमजोर किये भारत सरकार की खनिज और साथ ही उसकी एफडीआई नीति कार्यान्वित नहीं हो सकती है। इसे ध्यान में रखा चाहिए कि कांग्रेस, बीजेपी, और सीपीएम में 'एलडब्ल्यूई' के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों को सीमित करने और प्रधानमंत्री के शब्दों में 'निवेश के लिये और त्वरित आर्थिक विकास के लिए' अनुकूल वातावरण बनाने के प्रश्न पर आम सहमति है। इसने खून-खराबे की वह ज़मीन तैयार कर दी है जिसे 1947 के बाद से पिछले 60 सालों में नहीं देखा गया है। यह 'निर्णायक संघर्ष' होगा जिसमें एक पक्ष 'एलडब्ल्यूई' को नष्ट करने का प्रयास करेगा तो दूसरा पक्ष उसकी रक्षा करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होगा। इससे एक दीर्घकालिक स्थायी युद्ध का खतरा पैदा होता है। भारत सरकार का बहुत कुछ दांव पर है और उसने इस युद्ध में भारी निवेश कर रखा है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सरकार पीछे

हटने का या अपनी वर्तमान नीतियों को बदलने का कोई संकेत नहीं दे रही है। यहां तक कि यह विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा किये गए 'एमओयू' को 'व्यवसायिक गुप्तता' का हवाला देकर सार्वजनिक करने से बच रही है। जबकि दूसरी ओर व्यापक जनता की परेशानियों के प्रति इसका कोई सरोकार नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत सरकार जनता से काफी कुछ छिपा रही है।

जनवादी अधिकार कार्यकर्ता हमारे अपने ही लोगों के खिलाफ इस युद्ध का पुरजोर विरोध करते हैं चाहे वह किसी भी बहाने से चलाया जा रहा हो, क्योंकि राजनीतिक आकांक्षा को सैन्य शक्ति द्वारा नहीं कुचला जाना चाहिए। सभी युद्धों के पीछे शांतिपूर्ण और खुले संघर्षों का एक लम्बा इतिहास होता है। 62 सालों में 15 संसद चुनी गयी और किसी भी विवेकशील व्यक्ति के सामने यह साफ है कि मतदाता आज भी गरीब हैं बेरोजगार हैं और बहुत मुश्किल से गुजर-बसर कर पा रहा है। हमारा यह भी अनुभव है कि जब 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के नाम पर कानून की नयी विधाएं लायी जाती हैं और उन्हें लागू किया जाता है तो ये कानून न सिर्फ वैधानिक गतिविधियों का अपराधीकरण करते हैं बल्कि इसके साथ ही सत्ता के गैर कानूनी कृत्यों को वैधानिकता का जामा पहना देते हैं। इसका मतलब यह है कि सत्ता जब किसी संगठन को प्रतिबन्धित कर देती है और उसकी गतिविधियों मसलन प्रचार, संगठन आदि को प्रतिबन्धित कर देती है तब उस प्रतिबन्धित संगठन के किसी भी सदस्य को मदद पहुंचाना (जैसे चिकित्सा सुविधा, कानूनी सहायता देना और यहां तक कि उस संगठन के किसी सदस्य को रोजगार प्राप्त करने में सहायता देना या उनके द्वारा आयोजित बैठक में भाग लेना और उसमें भाषण देना) भी अपराध की श्रेणी में आ जाता है। प्रतिबन्ध हटने की स्थिति में यही सुबूत किसी अपराध की श्रेणी से बाहर हो जाता है। अतः 'राष्ट्रीय सुरक्षा' का सन्दर्भ लागू होते ही सबसे ज्यादा हानिरहित तथ्य भी अपराध की श्रेणी में आ जाते हैं। इसके अलावा इस बात की भी मजबूत सम्भावना रहती है कि सुबूतों को गढ़ा जाये है और उन्हें तोड़ा मरोड़ा जाये है ताकि तथाकथित सुरक्षा के लिए आन्तरिक खतरे के स्रोत को कुचलने की इसकी नीतियों के प्रति आलोचनाओं को दबाया जा सके।

हमने देखा है कि सत्ता अपनी निरंकुश ताकत का कितने व्यवस्थित तरीके से दुरुपयोग करती है। गिरफ्तारी, यातना, झूठी मुठभेड़ के अलावा सत्ता विरोध की आवाजों को 'नक्सल समर्थक' होने का आरोप लगाकर उन्हें कुचलती है जैसे कि नक्सलवादी या माओवादी होना ही अपने आप में कोई अपराध है।<sup>iv</sup> सुप्रीम कोर्ट के जजों ने सरकार को यह याद दिलाया है कि सहानुभूति रखना कोई अपराध नहीं है। हाल ही में हमने देखा है कि 9 फरवरी 2010 को छत्तीसगढ़ के दन्तेवाड़ा जिले में गच्छनपल्ली के निकट भोर में हुयी झूठी मुठभेड़ के बारे में केन्द्र व छत्तीसगढ़ सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे कोर्ट अफसरों ने किस तरह से सुप्रीम कोर्ट को भ्रमित करने का प्रयास किया<sup>v</sup>। छत्तीसगढ़ के कोण्टा में प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तारी वारंट के बावजूद एक सामूहिक बलात्कार का आरोपी बस्तर क्षेत्र में पुलिस की निगरानी में खुले आम घूम रहा है। सामाजिक कार्यकर्ताओं पर भीड़ के आक्रमण में पुलिस पूरी तरह भीड़ का साथ दे रही है और सामाजिक कार्यकर्ताओं को धमका रही है। लेकिन इन सब चीजों की कारपोरेट अखबारों में बहुत कम चर्चा होती है। स्वतन्त्र सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन क्षेत्रों से भगाया जा रहा है (जैसे वनवासी चेतना आश्रम के हिमांशुजी को)। उड़ीसा के नारायणपटनम में जाने वाली महिलाओं की टीम को रोका गया और छत्तीसगढ़ में दन्तेवाड़ा जाने वाली नेशनल एसोसिएशन ऑफ पीपुल्स मूवमेंट की टीम को भी उन क्षेत्रों में जाने से रोक दिया गया ताकि इस गन्दे युद्ध का सच लोगों के सामने न आ पाए। यहां तक कि भारत के गृहमंत्री ने भी दन्तेवाड़ा की जनसुनवायी में हिस्सा

नहीं लिया जबकि उन्होंने एक साक्षात्कार में इसमें भाग लेने का वायदा किया था। वास्तव में भारत सरकार की ताकतों ने वनवासीचेतना आश्रम को नष्ट किया, उनके कार्यकर्ताओं को झूठे आपराधिक मामलों में फंसा कर गिरफ्तार किया व उन्हें मारापीटा और दन्तेवाड़ा जाने वाली सामाजिक कार्यकर्ताओं की टीम को रोका और उनपर आक्रमण करने वाली आपराधिक भीड़ का साथ दिया।

यह दमनकारी युद्ध का माहौल हमें यह बताता है कि हमारी प्रतिबद्धताओं को सीमित करने वाले सरकारी आदेशों के सामने हमें नहीं झुकना चाहिए और हमें सरकारी प्रचार से परे जाकर माओवादियों के बारे में खुद एक समझदारी विकसित करनी चाहिए जो कि हमारे अपने ही लोग हैं।

## गुरिल्ला जोन के भीतर

बस्तर के गुरिल्ला जोन में जहां माओवादी अपनी जनताना सरकार चला रहे हैं, घुसते ही जो पहली चीज़ हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है अभिवादन का तरीका। सभी चाहे वह बूढ़े हो या जवान, आदमी हो या औरत, गांव वाला हो या पार्टी सदस्य, हाथ मिलाते हैं, अपनी मुट्ठी ऊपर उठाते हैं और आपको 'लाल सलाम' बोलते हैं। दूसरी चीज़ जो हमारा ध्यान आकर्षित करती है वह है जनताना सरकार में और साथ ही साथ पीएलजीए के प्रत्येक प्लाटून, कम्पनी और जनमिलीशिया में महिलाओं की संख्या। बहुत से प्लाटून में कमाण्डर महिला हैं। वास्तव में जो प्लाटून हमें लेने आया था उसका नेतृत्व एक महिला ही कर रही थी। महिलाएं सिर्फ कमाण्डर ही नहीं हैं बल्कि बहुत से खतरे वाल कार्यभार भी लेती हैं। ठीक उसी तरह जैसे पुरुष महिलाओं के साथ सभी जिम्मेदारी बराबर से उठाते हैं। जैसे लकड़ी इकट्ठा करना, पानी लाना, आग जलाना और भोजन पकाना। यह देखना विशेषतौर पर उल्लेखनीय है कि एक प्लाटून में पुरुष और महिलाएं आपस में किस तरह से व्यवहार करते हैं। सभी 20-25 किलो का भार उठाते हैं जिसमें उनके हथियार, राशन और किट होते हैं। दोनों ही सिलाई और तुरपायी में समर्थ होते हैं। वस्तुतः वे सिर्फ मरम्मत में ही नहीं बल्कि अपने किट की सिलाई में भी सक्षम होते हैं जिसमें वे अपने कपड़े, किताबें, आयुध सामग्री, पत्रिकाएं और रोजाना इस्तेमाल की अन्य चीजें रखते हैं। मेरे झोले की एक बद्धी टूट गयी थी जिसे प्लाटून के एक नौजवान पुरुष ने आसानी से जोड़ दिया। उसने यह काम बहुत सफाई से किया। वास्तव में जो किटबैग वे अपने कंधे पर उठाते हैं उसे वे खुद ही सिलते हैं। जिसमें दो जोड़ी कपड़े, रोजाना इस्तेमाल की चीजें और आयुध सामग्री आदि रखी जाती हैं। 'गुरिल्ला जोन' के अन्दर ही वर्दी सिली जाती है, जूते व रोज इस्तेमाल की अन्य चीजें बाहर बाजार से खरीदी जाती हैं। तीसरी चीज़ जो आपका ध्यान आकर्षित करती है, वह है साफ-सफाई। पानी को उबाला जाता है, शौच के लिए कैम्प से कुछ दूरी पर गड्ढे बनाए जाते हैं। मेरे साथी जॉन मिर्डल इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कहा कि इससे मुझे स्वीडिश सेना द्वारा तैयार किये गए फील्ड टॉयलेट की याद आती है। चौथी चीज़ जो आपका ध्यान आकर्षित करती है और जो बहुत ही सुखद आश्चर्य में डालती है कि चाहे दिन हो या रात, रोज के काम समाप्त होते ही प्रायः सभी पीएलजीए सदस्य अपनी किताबें निकाल कर पढ़ते हैं या अपनी नोटबुक पर कुछ लिखते हैं। सारी डिवीजनल जनताना सरकार गोण्डी/कोयम में अपनी पत्रिका निकालती हैं।<sup>vi</sup> इस तरह से पूरे दण्डकारण्य से कुल 25 पत्रिकाएं निकलती हैं। सभी प्रकाशित होती हैं और अन्दर ही वितरित होती हैं। मैंने 25-27 जनवरी 2010 के तीन दिवसीय बन्द के लिए यानी कार्यक्रम से एक हफ्ते पहले, पर्चों की स्क्रीन प्रिंटिंग देखी। कुल मिलाकर लोगों को रिपोर्ट मिलने में कोई दिक्कत नहीं है। उन्हें दिक्कत होती है उसके विश्लेषण में। इस समस्या का समाधान कैसे किया जाता है। सामूहिक विचार-विमर्श से इसका समाधान किया जाता है। लेख पढ़ा जाता है

और सभी को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वे बताएं कि उन्होंने इससे क्या समझा। और बातचीत व विचारविमर्श द्वारा लेख के अर्थ और उसके विचारों को व्याख्यायित किया जाता है और उसे समझा जाता है। शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है और उसे बढ़ावा दिया जाता है। जनताना सरकार द्वारा कक्षा पांच तक के छात्रों के लिए गणित, सामाजिक विज्ञान, राजनीति और हिन्दी विषय के चार पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी हैं। दण्डकारण्य का इतिहास, संस्कृति, जीवविज्ञान और सामान्य विज्ञान के चार पाठ्यक्रम तैयार होने की प्रक्रिया में हैं।

रोज के कामों में, सेन्ट्री ड्यूटी से खाना पकाने तक, सभी अपने हिस्से का काम करते हैं। चूंकि हम बाहर से आए हुए मेहमान थे, इसलिए हमें इन सब कामों से छूट मिल गयी थी। पहला काम वे पानी उबालने का करते हैं। उसके बाद नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पीटी के लिए तैयार हो जाते हैं। आठ बजे तक वे अपना नाश्ता करते हैं। नाश्ते में पोहा, खिचड़ी आदि खाते हैं जिसमें मूंगफली का दाना मिला होता है। इसके बाद चाय पी जाती है। दोपहर और रात के भोजन में चावलदाल और सब्जी होती है। भोजन सामान्य लेकिन पौष्टिक होता है। हफ्ते में एक दिन वे मीट खाते हैं। कभी-कभी यह ज्यादा भी हो जाता है, यदि मछली उपलब्ध होती है या फिर क्रान्तिकारी जनकमेटी (क्रान्तिकारी जनकमेटी एक चुना हुआ निकाय है, जिसके तहत तीन से पांच गांव होते हैं, इस तरह की 14 या 15 क्रान्तिकारी जन कमेटियां मिलकर एक एरिया क्रान्तिकारी जन कमेटी बनाती हैं और तीन से पांच एरिया क्रान्तिकारी जन कमेटी बन कर एक डिवीजन का निर्माण करती हैं) उन्हें सुअर का मांस उपलब्ध करा देती है। कभी-कभी जैसे कि जब हम अबूझमाड़ की यात्रा पर थे, तो मूंगफली का दाना पड़ी खिचड़ी (चावल और सन के पौधे के बीज का मिश्रण) हमें खाने को मिली। यह काफी सामान्य लेकिन रुचिकर और पौष्टिक था। निस्संदेह हमें खाने के साथ हरी मिर्च जरूर मिलती थी जिसे विटामिन सी का अच्छा स्रोत समझा जाता है। दूध की यहां काफी कमी है। अतः चाय के लिए दूध पाउडर का इस्तेमाल किया जाता है। जनताना सरकार के क्षेत्र में केला और पपीता जैसे फल पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। सोने का कोई निश्चित समय नहीं है। लेकिन आम तौर से रात दस बजे सभी बिस्तर पर चले जाते हैं। कैम्प कभी एक जगह नहीं रहता। यह बदलता रहता है। प्लास्टिक शीट बिछायी जाती है और लोग कम्बल ओढ़कर सो जाते हैं। चूंकि हम मेहमान थे इस लिए हमारे प्लास्टिक शीट पर एक शॉल भी बिछायी गयी और हमारे ऊपर एक प्लास्टिक शीट तान दी गयी ताकि हमें सुबह की ओस से बचाया जा सके। जब हम सुबह उठे तो हमें बिस्तर पर चाय दी गयी। हालांकि नित्यकर्म के लिए जंगल का इस्तेमाल किया जाता है लेकिन विगत वर्षों में उन्होंने यह कुशलता विकसित कर ली है कि वे इसके लिए गड्ढे बनाते हैं और कैम्प छोड़ने से पहले उन्हें अच्छी तरह ढक देते हैं। लोग चुनी हुयी पिक्चरें देखते हैं। जब मैं वहां था तो दो फिल्में दिखाई गयीं- 'रंग दे बसंती' और 'मंगल पाण्डेय'। यद्यपि यह तभी सम्भव होता है जब अपेक्षाकृत कोई सीनियर पार्टी सदस्य वहां अपने लैपटॉप के साथ होता है। लैपटॉप? वे लैपटॉप को चार्ज कैसे करते हैं? सभी कम्पनी के पास सोलर पैनल होता है जिसका इस्तेमाल लाइट जलाने कम्प्यूटर चलाने व अन्य चीजों के लिए किया जाता है। टीवी के कार्यक्रम और बहसों को यू ट्यूब से डाउनलोड किया जाता है और उनकी कॉपी बना कर उन्हें वितरित किया जाता है। इनमें से अधिकांश कम्पनियों के पास उपलब्ध होती हैं। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बहुत सी ऐसी बहसों जिनमें मैं भी भागीदार था, को इन लोगों ने पहले ही देखा हुआ है। कुछ ने कहा कि आप स्क्रीन पर काफी स्वस्थ लग रहे थे। लेकिन निस्संदेह उन सबकी पहली पसंद अरुन्धती राय थी। वह इंग्लिश बोलती हैं तो आप उसे कैसे समझ पाते हैं? कुछ वरिष्ठ कामरेड दूसरों के लिए उसका अनुवाद करके बताते हैं। मुझसे अरुन्धती के बारे में

बहुत से सवाल पूछे गये। जंगल में भी अरुन्धती के फैन बड़ी संख्या में हैं। पीएलजीए के लोग रेडियो सुनते हैं। फौजियों के अनुरोध पर सुनाए जाने वाले हिन्दी फिल्मी गीतों वाले रेडियो प्रोग्राम को वे पसंद करते हैं। लेकिन उनकी पहली पसंद बीबीसी समाचार है जिसे सभी लोग प्रत्येक सुबह और शाम सुनते हैं। स्थानीय रेडियो समाचारों की नकारात्मक रिपोर्टों को भी सुना जाता है। वे मानते हैं कि नकारात्मक रिपोर्टिंग भी एक समाचार है। प्लाटून में हर तीसरे व्यक्ति के पास एक रेडियो होता है। समाचार पत्र और पत्रिकाएं उनके पास कई दिनों बाद पहुंचते हैं। किताबें प्रायः नेट से डाउनलोड की जाती हैं। वहां कई ऐसी जगहें हैं जहां से नेट किया जा सकता है। शेष मानव की प्रतिभा का कमाल है। रात में सोलर पावर की रोशनी में लोग एकत्र होते हैं और पढ़ते हैं या फिर आग के आस-पास बैठते हैं और बातचीत करते हैं।

शराब और धूम्रपान? बस्तर में सभी आदिवासी खुद अपनी शराब बनाते हैं। इसमें सुल्फी और महुआ आम है। रोचक बात यह है कि पार्टी जनताना सरकार के क्षेत्र में आईएमएफएल दुकानों को खोलने की अनुमति नहीं देती लेकिन वे आदिवासी जनता के परम्परागत पेय के निर्माण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते लेकिन कदाचित ही कोई पार्टी सदस्य पीता हो। पार्टी सदस्यों से यह आशा की जाती है कि न ही वे धूम्रपान करेंगे और न ही शराब पियेंगे। यद्यपि धूम्रपान पर कोई पाबन्दी नहीं है। तेंदू पत्ता यहां बड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है। लेकिन पार्टी धूम्रपान के लिए लोगों को हतोत्साहित करती है। जनताना सरकार इस सन्दर्भ में प्रचार अभियान चलाती है। जब मैं वहां था तो मुझे बताया गया कि दो लोगों में सार्वजनिक तौर पर धूम्रपान छोड़ने की घोषणा की है और दूसरों से भी ऐसा करने का आग्रह किया है। मेरे लिए यह रोचक बात थी कि कैम्प में या प्लाटून में जो भी मेरे साथ था वह न तो धूम्रपान करता था न ही शराब पीता था।

### उनके बारे में जानना-समझना

शुरुआती कुछ दिन लोग मुझसे बातचीत करने में शरमाते रहे क्योंकि वे मुझे अपने अनुभव संसार में फिट नहीं कर पा रहे थे। क्या मैं भारतीय हूं? यदि हां तो मैं जॉन मिर्डल से उनकी भाषा में कैसे बात कर पा रहा हूं? इसके अलावा उनकी हिन्दी भी अच्छी नहीं थी और वे इस बारे में आश्वस्त नहीं थे कि मैं छत्तीसगढ़ी समझ लूंगा जिससे वे अच्छी तरह परिचित हैं। वे यह भी जानते थे कि मुझे गोंडी या कोयम नहीं आती। लेकिन कुछ दिनों पश्चात हमारे बीच की उत्सुकता इन सब पर भारी पड़ी। और हमने वार्तालाप शुरू कर दिया। जब उन्हें पता चला कि मैं हिन्दी लिख और पढ़ सकता हूं और मैं एक भारतीय हूं जो काफी समय बाहर रहा लेकिन अब दिल्ली में रहता हूं, तब वे मुझे अपने अनुभव संसार में फिट कर पाए। यह काम और भी सरल हो गया जब हमने साथ गाना शुरू किया। उन्होंने मुझसे दिल्ली में रहने वाले लोगों के बारे में सवाल पूछे। क्या वहां लोगों के पास रोजगार है? वहां लोग कितना कमा लेते हैं? उनका रहन-सहन कैसा है? यूरोप में क्रान्ति क्यों सफल नहीं हुयी जबकि मार्क्स और एंगेल्स ने वही रह कर काम किया। क्या अभी भी वहां कोई वर्ग संघर्ष नहीं है? तालिबान और दूसरे जेहादी ग्रुप मस्जिदों पर बम क्यों फेंकते हैं? और अमरीकी सेना की बजाय अपने ही लोगों को क्यों निशाना बनाते हैं? कश्मीरियों की उनकी आज़ादी के लिए लड़ने वाली कोई एक पार्टी क्यों नहीं है? सभी सवालों के जवाब चाहिए थे जो बहुत आसान नहीं थे। तीस साल के आन्दोलन ने उन्हें अपने जंगल से बाहर की दुनिया के बारे में सजग बना दिया था। वे जानते थे कि जनता दमन के खिलाफ अपनी स्वतन्त्रता के लिए फिलीस्तीन, ईराक, अफगानिस्तान, श्रीलंका, कश्मीर, नागालैण्ड, मणिपुर और असम में लड़ रही है। नाकेबन्दी के बावजूद उनके दिमाग स्वतन्त्र हैं। मुझे पुनः याद आया कि जब मैं छात्र था तो मैंने पाया कि संघर्षशील जनता

बेहद संवेदनशील होती है। लेकिन इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि एक तरफ वे लोग हैं जैसे कि फिलीस्तीनी, लेबनान के हिजबुल्ला, लैटिन अमेरिका या दक्षिणी अफ्रीका के लोग, जो एक वैश्विक भाषा बोलते हैं और इसलिए वे दूसरों के संघर्षों से तादात्म्य बिठा लेते हैं और दूसरी तरफ वे लोग हैं जिनकी दृष्टि बहुत सीमित है और वे अपने से भिन्न या दूसरे जगहों के जनसंघर्षों की बहुत कम परवाह करते हैं। मुझे यह बात भीचौंकाती है कि वैश्विक होता भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग जनताना सरकार के अन्तर्गत रहने वाले जंगल के निवासियों से कहीं ज्यादा सीमित और दूसरे देशों के बारे में कम जानकारी रखने वाले हैं। जो जंगलों में रहते हैं वे दूसरी जगहों के जनसंघर्षों से भावनात्मक रूप से अपने आप को जोड़ लेते हैं। जबकि शहरी बुद्धिजीवी वर्ग जिसके पास सारी सूचनाओं के स्रोत होते हैं, या तो इनके बारे में बहुत कम जानता है या इनकी परवाह नहीं करता।

गुरिल्ला जोन के अन्दर और इसकी परिधि पर रहने वाले आदिवासी किसानों से बात करते हुए हाल में उभरे बस्तर में संघर्षों के बारे में तीन तर्कों से मेरा सामना हुआ। पहला, बड़े कारपोरेट घरानों के हित में आदिवासी जमीन हड़पने के लिए सरकार यह युद्ध चला रही है। आदिवासी किसानों को चेतावनी दी जा रही है कि यदि वे अपनी सहमति नहीं देते और जमीन की क्षतिपूर्ति नहीं लेते तो वे न सिर्फ अपनी जमीन खोएंगे बल्कि उन्हें कभी भी क्षतिपूर्ति नहीं मिलेगी। (ऐसी खबर है कि सीपीआई के नेतृत्व वाली आदिवासी महासभा जनता को इस बात के लिए तैयार करने का प्रयास कर रही है कि वे ज्यादा क्षतिपूर्ति लेकर मामले को समाप्त करें) जबमैने यह बात कई लोगों से सुनी तो इस पहली के हल के लिए मैं उत्सुक हो उठा। अतः मैंने इसकी पड़ताल शुरू कर दी। इसका क्या मतलब है कि उन्हें क्षतिपूर्ति नहीं भी मिल सकती है। मुझे पता चला कि कम्पनी के 'एजेण्ट' लोगों को चेतावनी दे रहे हैं कि यदि वे उन्हें दिये जाने वाले धन के 'प्रस्ताव' को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह धन किसी और को दे दिया जाएगा। यह पता चला कि फर्जी चेक की घटनाएं यहां आम बात हैं। जहां ये चेक या तो बाउन्स हो जाते हैं या इन्हें मूल भूस्वामी के बजाए किसी और के नाम जारी कर दिया जाता है। दूसरा, जो एक सामान्य बात उन्हें जमीन देने से रोकती है वह यह है कि जमीन की धन के रूप में क्षति पूर्ति कैसे हो सकती है जहां जमीन उनकी जीविका का साधन ही नहीं है वरन आने वाली पीढ़ियों का भी एकमात्र सहारा है। इसके अलावा जमीन ही नहीं सुल्फी, आम, इमली जैसे वृक्ष भी उनकी जीविका का साधन हैं। तथा इनके उत्पादों का वे खुद उपभोग भी करते हैं। तीसरा, सरकार जिस विकास की बात करती है वह बकवास है। हमने बैलाडीला में उसका विकास देखा है। इन सभी वर्षों में आदिवासी खुद ही कमाते खाते रहे सरकार से उन्हें बहुत कम मदद मिली। अब आज जब कारपोरेट घरानों को उनकी ज़मीनें चाहिए तो सरकार 'विकास' की बात कर रही है। वे चाहते हैं कि सरकार उन्हें उनके हाल पर छोड़ दे। एक बूढ़े आदिवासी किसान ने कहा कि यदि वे हमारे विकास के लिए इतने ही इच्छुक हैं तो इन वर्षों में खेती का विकास करने के लिए उन्हें किसने रोका था।

जंगल के अन्दर एक बैठक में जब हम कुछ वरिष्ठ लोगों से बात कर रहे थे तो उन्होंने जो कहा उससे मैं आश्चर्यचकित रह गया। "हम वृद्ध हो चुके हैं, अब हमने अपना जीवन जी लिया है तो यदि सरकार द्वारा हमारी जमीन छीने जाने के खिलाफ हमें अपना जीवन भी देना पड़े तो हम जरूर देंगे क्योंकि हम यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि हमारे बच्चों को इस जमीन से बेदखल न होना पड़े।" उन्होंने अपनी ही पीढ़ी के दूसरे लोगों की तरफ इशारा करते हुए कहा-"हम सभी संघर्ष में उतरने जा रहे हैं देखते हैं सेना हमसे कितनों को मार पाती

है। क्या वह समझती है कि वह हम सबको मार सकती है? हम जानते हैं कि हमें कैसे लड़ना है?" गुस्सा बहुत स्पष्ट था। मैंने उनसे पूछा कि मैं बाहर के लोगों को क्या बताऊँ? उन्होंने कहा -"कृपया उन्हें यह बताइये कि उनकी सरकार उनसे झूठ बोल रही है। आजवे हमसे हमारी जमीन और जंगल छीन रहे हैं। कल इससे हमारी जिन्दगी छिन जाएगी।" मैंने उनसे पूछा कि इसका क्या मतलब है? उन्होंने कहा-"यह जंगल और जमीन ही हमारी जिन्दगी है।"

मैंने गृहमंत्री पी चिदम्बरम का तहलका को दिया साक्षात्कार पढ़ा- "मेरी समझ से मैं इस बारे में पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि कोई भी देश तब तक विकसित नहीं हो सकता जब तक वह अपने प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय संसाधनों का इस्तेमाल न करे। खनिज सम्पदा एक सम्पदा है जिसे जनता के हित में लगाया जाना चाहिए। और क्यों नहीं। क्या आप चाहते हैं कि आदिवासी शिकार, भोजन संग्रह की अवस्था में ही रहें? क्या हम उन्हें नृतत्वशास्त्री संग्रहालय के रूप में सुरक्षित रखना चाहते हैं? हम खनिज सम्पदा को अगले दस हजार सालों तक जमीन के अन्दर ही बने देने रह सकते हैं लेकिन क्या इससे इन लोगों का विकास होगा। हम इस तथ्य का सम्मान करते हैं कि वे नियमगिरी पहाड़ी की पूजा करते हैं। लेकिन क्या इससे उनके बच्चों के पैरों में जूते आ सकेंगे या वे स्कूल जा सकेंगे? क्या इससे इस तथ्य का समाधान हो सकेगा कि वे बहुत ही कुपोषणग्रस्त हैं? और उन्हें कोई चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नहीं है। खनिजों के खनन पर बहस शताब्दियों से जारी है। यह कोई नयी बात नहीं है।"

लेकिन हम उनमें से नहीं हैं जो भूखों मर रहे हैं, उन्होंने कहा। लेकिन जो बाहर हैं उनका क्या? "यदि जनताना सरकार को उन तक पहुंचने की अनुमति दी जाती है तो वे भी लाभान्वित हो सकेंगे।" तो क्या आप विकास नहीं चाहते हैं, मैंने फिर पूछा। "नहीं, हम नहीं चाहते कि बाहर के ये बड़े पूंजीवादी घराने यहां आकर हमें लूटें। हम जानते हैं कि बैलाडीला में क्या हुआ?" 'देखो बैलाडीला में क्या हुआ?' यह उनके लिए एक मुहावरा बन चुका है।  
(देखिये गौतम नवलखा आशीष गुप्ता का लेख "[द रियल डिवाइड इन बस्तर](#)" अगस्त 15, 2009)

### हत्याओं के बारे में

मैंने अपने साथियों के सामने कई सवाल रखे। मैंने उनसे पूछा कि यह कहा जाता है कि पार्टी लोगों को मारती है और उनके घरों को जला देती है। 'मुखबिर' होने के थोड़े भी अंदेशों के कारण लोगों को मार दिया जाता है। लेकिन हमारे साथियों ने एक साथ विरोध किया-"हम हत्या, लूट या बलात्कार नहीं करते।" हम जनता की मदद करते हैं।" चेतू ने कहा -"मैं दक्षिण दन्तेवाड़ा से आया हूँ जहां सलवा जुद्ध के लोगों ने किसी भी लड़कीको बखशा नहीं है। और उनके साथ बलात्कार किया है। वे असहाय नागरिकों को उठा लेते हैं। वे गांव वालों को मारने की बजाय हमसे आकर क्यों नहीं लड़ते?" सुखलाल ने कहा कि उसका छोटा भाई जेल में है, जहां उसे "गोला" में रखा गया है। इसका मतलब यह है कि उसे जबरदस्ती बैठे अवस्था में एड़ियों और कलाईयों में जंजीरें डाल कर रखा गया है। वह दण्डकारण्य आदिवासी किसान मजदूर संगठना (डीएकेएमएस) का सदस्य था। और यही उसका अपराध था। इसका क्या यह मतलब है कि वे कभी हत्या नहीं करते? नहीं, ऐसा नहीं है। हम सिर्फ 'जनता के दुश्मनों' को मारते हैं। लेकिन ये जनता के दुश्मन कौन हैं? क्या जो पार्टी का विरोध करते हैं, वे जनता के दुश्मन हैं? नहीं यह सत्य नहीं है। हमारे लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि आप हमारी पार्टी को दुश्मन समझते हैं, उसका विरोध करते हैं या पार्टी की आलोचना करते हैं। लेकिन अगर आप सरकारी बलों का



साथ देते हैं और उनके साथ काम करते हैं तब आप निश्चित ही जनता के दुश्मन हैं। मैंने कहा ठीक है फिर ऐसे लोगों को क्या सजा दी जाती है? हम उन सभी को नहीं मारते जो जनता के दुश्मन हैं। हमारी पार्टी ने मुखबिरों को मारनेसे कई बार रोका है। बार-बार की चेतावनियों के बावजूद भी जब वे अपना व्यवहार नहीं बदलते तभी उन्हें मारा जाता है।

मुझे याद आया, जनवरी 2010 में जॉन मिर्डल और मुझे दिये गये सीपीआई माओवादी के महासचिव का साक्षात्कार... "हमारे एक विस्तारित क्षेत्र की यह घटना है जहां आईजी पुलिस के सहयोग से दो गांव के 33 लोग दुश्मन के एजेण्ट बन गये। इस सन्दर्भ में हमारे कामरेड वहां गए और उन्होंने मुद्दे को सुलझाया। गांव वाले पुलिस के मुख्य एजेण्ट को मृत्युदण्ड देना चाहते थे। लेकिन पार्टी ने हस्तक्षेप किया और उस व्यक्ति को अपनी गलती सुधारने का मौका दिया।" पार्टी डीके में अपनी जनताना सरकार के माध्यम से जो काम करती है उसका यह असर है या मृत्युदण्ड न देने की यह कोई अलग-थलग घटना है? या यह मेरा संदेह है जो मुझे भ्रमित कर रहा है, मैं नहीं जानता। लेकिन जैसे-जैसे मैं सोचता जाता हूं, मुझे यह विश्वास होता जाता है कि यदि ये लोग अन्धाधुन्ध हत्याओं में लिस होते तो डीके में जनताना सरकार अस्तित्व में नहीं रह पाती। सुखलाल ने मुझसे पूछा कि क्या मैंने यहां हाईटेंशन वाले तार देखे हैं? मैंने कहा हां।

क्या आप जानते हैं कि जब जन मिलीशिया के लोगों ने पिछले वर्ष कुछ टावरों को उड़ा दिया तो पार्टी ने एक मीटिंग बुलायी और उनकी इस कृत्य के लिए आलोचना की और कहा कि यह गलत है।

मैंने पूछा कि पार्टी ने इस बारे में क्या कहा और जन मिलीशिया ने ऐसा क्यों किया।

पार्टी ने उनसे कहा कि ऐसा करने से शहरों में रहने वाली गरीब जनता ज्यादा प्रभावित होगी क्योंकि अमीर लोग जनरेटर से अपना काम चला लेंगे।

**जन मिलीशिया के लोगों ने क्या कहा?**

वे यह कह कर अपने कृत्य को औचित्य प्रदान करने का प्रयास कर रहे थे कि ऐसा करने का उनका मकसद यह था कि इसके बाद पुलिस मरम्मत के लिए वहां आएगी और वे उनके लिए एम्बुश लगाएंगे।

-तो क्या इसका मतलब यह है कि जन मिलीशिया ऐसे एम्बुश का फैसला खुद ले सकती है।

-नहीं, उन्हें पीएलजीए को सूचित करना होता है।

-तो क्या पार्टी एम्बुश से बचती है? फिर यहां वहां एम्बुश, लैंड माइन और विस्फोटक पदार्थों के बारे में बात क्यों होती है? मैंने पीएलजीए कमाण्डर रामू के सामने यह सवाल रखा।

उसने कहा कि निस्संदेह हम एम्बुश करते हैं। लेकिन सभी एम्बुशों की योजना सावधानी पूर्वक बनायी जाती है और इसमें समय लगता है क्योंकि हम दुश्मन के मुकाबले कमजोर अवस्था में हैं। हम लापरवाही से और अपनी मनमर्जी से हमले नहीं कर सकते। जब तक हम तैयार नहीं होते, हम सामान्यतः दुश्मन के साथ नहीं उलझते। हम ऐसे आक्रमणों पर ज्यादा ध्यान देते हैं जहां से हम हथियार प्राप्त कर सकें। उसने कहा कि कुछ दिन पहले (21 जनवरी 2010?) सेना में शामिल होने के कारण जिन दो लोगों की हत्या की खबर आयी है और जिसके

बारे में गृहमंत्री पी चिदम्बरम ने रायपुर में बोला है उससे हमारा कोई लेना देना नहीं है। हमें इस घटना की कोई जानकारी नहीं है।

इसका क्या मतलब है ?

उसने कहा कि पार्टी जो करती है उसे स्वीकार करती है। चाहे उसका असर हमारे लिए खराब ही क्यों न हो। इसी कारण से आप जैसे लोग हमारी आलोचना कर पाते हैं। उसने यह भी जोड़ा कि वे इसे 'सकारात्मक आलोचना' मानते हैं। किन्तु उन घटनाओं के बारे में वे कुछ नहीं कह सकते जो उन्होंने किया ही नहीं। वनवासी चेतना आश्रम के हिमांशु जी के साथ जो कुछ हुआ उसकी ओर उन्होंने ध्यान दिलाया। इन सभी वर्षों में हमारे ऊपर उन्हें परेशान करने का आरोप लगता रहा। लेकिन आज राज्य ने उनके आश्रम को ध्वस्त कर दिया है। हमसे जोगलती होती है, उसके लिए हम माफी मांगते हैं लेकिन उन हत्याओं के लिए हमें दोष कैसे दिया जा सकता है जो हमने की ही नहीं। उसने कहा कि हम इस समय रणनीतिक रक्षा की स्थिति में हैं। और जैसा कि हमारे जीएस ने आपको बताया है कि जब भी हम कोई कार्यवाही करते हैं तो यह सिर्फ एक सैन्य कार्यवाही ही नहीं होती वरन राजनैतिक और सांगठनिक छलांग भी होती है। सभी कार्यवाहियों की योजना इसी रूप में बनायी जाती है।

झारखण्ड में सिर काटने और ट्रेन में डेटोनेटर का प्रयोग करने के बारे में उनका क्या कहना है? क्या इसकी योजना बनायी गयी थी? उसने कहा यह सब हमारे लिए अच्छा नहीं है और पार्टी ने अपनी गलती मान ली है। मैंने उनसे सवाल किया कि हर बार आप इस तरह की गलतियां करते हैं और बाद में माफी मान लेते हैं, इससे आन्दोलन कैसे आगे बढ़ेगा? क्या इसमें अनुशासनहीनता का सवाल नहीं खड़ा होता? उसने कहा कि मैं डीके बारे में जानता हूं। मैं दूसरे क्षेत्रों के बारे में नहीं बोल सकता।

मैंने सीपीएम पार्टी कार्यकर्ताओं के मारे जाने पर सवाल खड़े किये। क्या उन्हें मारना जरूरी था? क्या वे भ्रष्ट और शोषक लोग थे। क्या पार्टी जनता की बदले लेने की उनकी मांग में उनका साथ दे रही थी? यदि ऐसा था तो क्या उन्होंने उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास नहीं किया और उन्हें यह नहीं समझाया कि इस तरह की अन्धाधुंध हत्याओं से उन्हें नुकसान होगा और उन्हें अपनी तरफ लाने में दिक्कतें आएंगी। यदि शहरी मध्यवर्ग ऐसी हत्याओं पर गलत आंसू बहा रहा है तो वे उन्हें क्रान्ति की तरफ लाने के लिए क्या कर रहे हैं? यदि क्रान्ति के सिपाही अनुशासित नहीं रहेंगे और बदले की हत्याओं में शामिल रहेंगे तो पार्टी जनता का समर्थन कैसे प्राप्त कर पाएगी? उन्होंने चुपचाप सुना और यह कह कर अपना बचाव किया कि हम विवेकहीन हिंसा में विश्वास नहीं करते। वहां मौजूद एक वरिष्ठ नेता ने इन सवालों के जवाब में कहा कि सम्बन्धित राज्य कमेटी की रिपोर्ट को पढ़े बिना वह इसका उत्तर नहीं दे सकते। यह अच्छा ही है कि उन्होंने सतही तरीके से इन आलोचनाओं को बिना तथ्यों की पड़ताल के स्वीकार करने से इंकार कर दिया। लेकिन एक चीज़ जो मैंने गौर की वह यह कि उन्होंने मेरी आलोचनाओं को खारिज नहीं किया। जब मैंने एक वरिष्ठ नेता से यह कहा कि यदि पार्टी अनुशासन बरकरार नहीं रख पाएगी तो उन्हें इस बारे में पुनर्विचार करना होगा कि क्या उनकी ताकतें जन युद्ध लड़ने के लिए राजनीतिक तौर पर तैयार हैं। उन्होंने जानना चाहा कि क्या यह सिर्फ मेरा विचार है या औरों के भी ऐसे ही विचार हैं। जब मैंने कहा कि मैं कड़ियों के विचारों का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं। तो उन्होंने सहमति में सिर हिलाया।

लेकिन मैं अभी भी इस बात को नहीं समझ पा रहा हूँ कि किस स्तर पर इसका निर्णय किया जाता है कि कहां और कैसे कोई ऐक्शन किया जाता है। इसका निर्णय पार्टी करती है या स्कवैड करती है। यदि स्कवैड बिना पार्टी की अनुमति के कोई ऐक्शन करता है तो इसके लिए क्या दण्ड निर्धारित है? उदाहरण के लिए 17 फरवरी 2010 (?) को हुए जमुई नरसंहार की अनुमति किसने दी थी?<sup>vii</sup> या 27 नवम्बर 2009 (?) को टाटा-बिलासपुर पैसैंजर गाड़ी में डेटोनेटर का इस्तेमाल करने की अनुमति किसने दी?<sup>viii</sup> और लालगढ़ में हुयी हत्याओं को रोकने में पार्टी विफल क्यों हुयी? मैंने जितने भी सवाल उठाए, उन्होंने ध्यान से सुना। लेकिन उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया सिवाय इसके कि उन्होंने मुझसे कहा कि वे मेरी आलोचनाओं का सम्मान करते हैं। यद्यपि मुझे यह बताया गया कि लोग शायद यह नहीं जानते लेकिन अनुशासनात्मक कार्यवाइयां हमेशा की जाती हैं। परन्तु मेरे द्वारा उठाए गए विशिष्ट घटनाओं के बारे में मुझे कोई उत्तर नहीं मिला कि उस सन्दर्भ में क्या किया गया। लेकिन उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दण्डकारण्य बनाम बिहार-झारखण्ड में उलझने की जरूरत नहीं है और मुझे तुरन्त निष्कर्षों पर नहीं पहुंच जाना चाहिए। वस्तुतः दूसरी जगहों पर घटी इन घटनाओं को जब मैं लगातार उनके सामने रख रहा था तो उनमें से कुछ परेशान लग रहे थे। मैं इस बात पर सहमत था कि मैं गलत हो सकता हूँ और बिहार-झारखण्ड तथा पश्चिम बंगाल का आन्दोलन अपने भिन्न इतिहास के बावजूद जनता में मजबूती से पकड़ बना रहा होगा। हालांकि हाल की बहुत सारी घटनाएं जो बिहार-झारखण्ड-उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में हुयीं, वह गलत थीं। इसके अलावा दूसरी जगहों के विपरीत जनताना सरकार ने दण्डकारण्य में दो दशकों के इतिहास में जनता के बीच अपनी जड़ें जमायी है, जहां पार्टी ऐसे वैकल्पिक ढांचे का निर्माण करने में समर्थ हुयी है जिसका वस्तुतः कोई मुकाबला नहीं है। यह सब उसने अपेक्षाकृत लम्बे समय और कहीं अधिक स्थायी परिस्थिति में किया है। इस कारण से वे अपना प्रभुत्व दबाव से नहीं बल्कि सहमति के जरिये बनाने में समर्थ हुए। और इसका प्रतिबिम्ब जनताना सरकार के संविधान में भी दिखता है। उनका यही वैचारिक प्रभुत्व, उनकी ताकत और उनके स्थायित्व का स्रोत है। मैं यहां सचेत करना चाहता हूँ कि दूसरी जगहों पर भी दूसरे तत्वों जैसे सुधार और शोषितों के बीच पार्टी के स्थायी काम के कारण वैचारिक प्रभुत्व सर्वसहमति से ही हो सकता है। किन्तु प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष का अपना अलग इतिहास है। जबकि मैं यह मानता हूँ कि इससे डीके और दूसरे क्षेत्रों के बीच अनुभव और व्यवहार में अन्तर होगा लेकिन यह कितना बड़ा होगा और कितनी अलग-अलग परिस्थितियां पैदा करेगा-इस मुद्दे पर फिलहाल मैंने अपनी राय स्थगित कर दी है जब तक कि मैं बिहार-झारखण्ड गुरिल्ला जोन की यात्रा नहीं कर लेता।

मुझे डीके स्पेशल जोनल कमेटी की ओर से 28 अप्रैल 2009 को, 16 अप्रैल 2009 में एक बारूदी सुरंग के विस्फोट में मारे गए लोगों के परिवारों के नाम सम्बोधित आत्मालोचना का एक सर्कुलर मिला। इसमें कहा गया है कि "...हम जानते हैं कि महज गलती मान लेने से आपके प्यारे सम्बन्धी वापस नहीं लौटेंगे न ही हमारी आत्मालोचना आपके आंसू पोछ सकती है लेकिन हम आपको यह बताना चाहेंगे कि आपके निकटसम्बन्धियों से पार्टी की कोई दुश्मनी नहीं है। यह एक दुर्घटना थी। अर्धसैनिक रूप में नियुक्त पुलिस के लोग और सामान्य पुलिस कर्मचारी सहित सरकारी कर्मचारी हमारे दुश्मन नहीं हैं। आप हमसे पूछ सकते हैं कि फिर हम क्यों पुलिस और अर्धसैनिक बलों पर हमले करते हैं। हम बारूदी सुरंगें क्यों लगाते हैं। या हम हिंसा का इस्तेमाल क्यों करते हैं। वास्तव में यह व्यवस्था ही इसके लिए जिम्मेदार है। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि सभी शांति पूर्ण आन्दोलनों एवं संघर्षों को लाठी और गोली का सामना करना पड़ता है। हम न तो चरमपंथी हैं न ही आतंकवादी, जैसा कि शोषकवर्ग की यह सरकार प्रचारित करती है। हम मजदूर-किसान और

मध्यवर्ग के बच्चे हैं। हम पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों में शोषण और दमन के खिलाफ लोगों को संगठित कर रहे हैं ताकि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें..."।

इसमें इस तथ्य की भी चर्चा थी कि 4 जनवरी 2009 को दक्षिण बस्तर के सिंगाराम में और उसके आसपास 19 आदिवासियों को मार दिया गया था। इनमें चार महिलाएं थीं। महिलाओं के साथ पहले सामूहिक बलात्कार किया गया फिर उनकी हत्या की गयी। पश्चिम बस्तर के लिंगापल्ली में 6 आदिवासियों की हत्या की गयी। 2005 से लेकर अब तक 1000 आदिवासियों की हत्या की गयी। सैकड़ों महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। "यह सब सिर्फ इस लिए किया गया कि डीके के जंगलों में मौजूद खनिज सम्पदा को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विदेशी पूंजीपतियों को सौंपा जा सके। इस हिंसा का उत्तर देने के लिए हमें भी हिंसा करने पर बाध्य होना पड़ रहा है। यदि हमने उनका प्रतिरोध नहीं किया होता तो वे अपने उद्देश्यों में सफल हो गये होते। निस्संदेह पुलिस और अर्धसैनिक बलों के जवान सामान्य मजदूर किसान या मध्यवर्गीय परिवारों से आते हैं। लेकिन वे शोषकों के हाथ का हथियार बन चुके हैं। और वे उन्हीं पर आक्रमण कर रहे हैं जिनके बीच वे पले बढे हैं। हत्याएं करना, लूटपाट करना, बलात्कार करना, गैर कानूनी गिरफ्तारियां करना, घूस लेना आदि पुलिस बलों का सामान्य व्यवहार बन चुका है। कई बार हमने पर्चे निकाल कर उनसे अपील की है कि वे गरीब और शोषित लोगों पर हमले न करें। यही वह सन्दर्भ है जिसमें हम बारूदी सुरंगों का इस्तेमाल करते हैं और पुलिस व सशस्त्र बलों पर हमले करते हैं।"

यह "हमने ऐसा कहा था" वाला कट्टर आलोचकों का दृष्टिकोण या "वर्ग युद्ध में यह होता ही है" वाले कट्टर समर्थकों के दृष्टिकोण से काफी अलग है। दोनों ही तरह के लोग जनता में काम करते हुए प्रतिदिन के संघर्षों से कटे हुए हैं। जरूरत यह है कि भूसे को अनाज से अलग किया जाए और जब भी गलती हो तो उसे स्वीकार किया जाए। मेरे सभी सवालियों को और कभी-कभी मेरे कठोर सवालियों को भी उन्होंने एक बार भी खारिज नहीं किया। यद्यपि वे दूसरे क्षेत्रों के बारे में बोलने से बचते रहे लेकिन डीके में वे जो कर रहे हैं उसके बारे में उन्होंने खुल कर बात की। इस रूप में कहें तो यहां डीके में कमान में राजनीति है। अतः पार्टी की ओर से जारी किये गए सार्वजनिक आत्मालोचना के हजारों पर्चे सही दिशा में उठाया गया एक कदम है। क्योंकि वे जानते हैं कि वे जनता के प्रति जवाबदेह हैं और यदि उन्हें गम्भीरता से लिया जाना है तो उन्हें जिम्मेदारी के साथ काम करना होगा।

### वे इतने निर्भय क्यों हैं?

मैंने वहां मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति से यह सवाल पूछा कि सेनाओं की इतने बड़े पैमाने पर तैनाती और कैम्पों की स्थापना, जिससे वस्तुतः गुरिल्ला जोन की आर्थिक घरेबन्दी कर दी गयी है (अन्तरराष्ट्रीय मानवतावादी कानून के तहत इस कृत्य को युद्ध के बराबर माना जाता है), से डर नहीं लगता? एक ने जवाब दिया-"अपनी राज्य सत्ता के लिए लड़ना पड़ेगा।" लेकिन क्या आपको डर नहीं लगता? यदि हम डर गए तो 'सरकार हमें और डराएगी'। उन्हें यह आत्मविश्वास कहां से मिलता है? मैंने यह सवाल उस नौजवान सुखमती नाम की महिला सैनिक से पूछा जो उस सड़क का सर्वे करने गयी थी जिसके दोनों ओर सुरक्षा बलों के कैम्प थे उसने सबसे अन्त में सड़क पार किया। तुम्हे ऐसे खतरनाक काम करने से डर नहीं लगता? सबसे पहले रोड पर पहुंचना और सबसे अन्त में वहां से आना। उसने मुस्कुरा कर कहा-"मैं बचपन से ही पुलिस वालों को देख रही हूँ। वे हमारे गांव में

आते थे और धमकाते थे। मैं उनसे नहीं डरती।" ऐसी भयंकर ताकत से आप कैसे लड़ेंगी? मेरे साथियों ने मुझसे कहा कि वे सेना से नहीं डरते क्योंकि हम अपने इस क्षेत्र में दुश्मन से लड़ते हुए लाभ की स्थिति में रहते हैं। लेकिन एसपीओ शायद इस योजना को कुछ नुकसान पहुंचाएं। इसके अलावा एसपीओ की आपराधिक प्रवृत्ति के कारण लोग माओवादियों का सहारा लेने को प्रोत्साहित हो रहे हैं। जब मैंने यह सवाल डीकेप्रभारी सोनू से पूछा तो उन्होंने कहा कि 2005 में जब 6 महीने के लिए सलवा जुझम शुरू हुआ तो हमें इस सवाल का सामना करना पड़ा। हमसे पूछा गया कि अब हम क्या करेंगे। जब गांव पर आक्रमण किया जा रहा है, उन्हें जलाया जा रहा है तथा पार्टी सदस्यों व समर्थकों को खोज-खोज के मारा जा रहा है। कुछ ने हमसे इलाका छोड़ देने के लिए कहा। कई मुखिया, व्यवसायी और अध्यापकों ने यह विश्वास करना शुरू कर दिया कि सरकार इस बार जीत जाएगी। और इस लाइन को प्रचारित करना शुरू कर दिया। लेकिन 6 महीने के अन्दर बाजी पलट गयी।

इस दौरान क्या-क्या हुआ?

फरवरी 2006 में पार्टी ने इसका जवाब दिया। वे जनता को लामबन्द करने में समर्थ थे। पहले उन्होंने जंगल में विस्थापित हो चुके लोगों का पुनर्वास करने का पूरा प्रयास किया। उन्हें लामबन्द किया और उन्हें चेतावनी दी कि उनके विस्थापन का मतलब यह है कि जंगल को खाली किया जाए और उसे खनिज कम्पनियों को सौंप दिया जाए। पार्टी ने उन्हें, पार्टी के नेतृत्व में चले उन संघर्षों की याद दिलायी जो जंगल विभाग, जंगल ठेकेदार, पुलिस और उनके खुद के मुखियाओं के खिलाफ चला था। उन्हें ब्रिटिश राज्य के खिलाफ चले भूमकाल विद्रोह की याद दिलायी गयी कि बिना संघर्ष किये हम उन उपलब्धियों की रक्षा नहीं कर पाएंगे जिन्हें जनता ने मुश्किल से हासिल किया है। पार्टी ने उनसे सलवा जुझम का प्रतिरोध करने के लिए जन मिलीशिया में शामिल होने का आह्वान किया। यह सब देखने में सरल लगता है। लेकिन सलवा जुझम के गुण्डों से बच निकले लोगों को बचाना, उन्हें आश्रय देना, उनका पुनर्वास करना, उन्हें आशा और साहस देना काफी श्रम साध्य काम था। वह भी उस वक्त जब पार्टी की घेरेबन्दी की जा रही थी, उनके सदस्यों की हत्याएं की जा रही थी और साथ ही 'तटस्थ' ऐक्टिविस्टों द्वारा पार्टी के खिलाफ कुत्सा प्रचार का अभियान चलाया जा रहा था और सलवा जुझम को जायज ठहराते हुए खुद पार्टी को ही इसका दोषी बताया जा रहा था। इस विशाल कार्यभार के प्रति यदि जनता का समर्थन नहीं होता तो माओवादियों के लिए सलवाजुझम का प्रतिरोध कर पाना असम्भव था।

जीएस के कहने का यही मतलब था जब उन्होंने अपने साक्षात्कार में कहा-"जनता हमें आमन्त्रित कर रही है। यहां तक कि उन कम अनुभवी और शस्त्रों के मामले में भी कमजोर कैडरों को जनता अपने क्षेत्रों में बुला रही है। उदाहरण के लिए उत्तरप्रदेश के सोनभद्र में गांव की जनता खुद हमें आमन्त्रित कर रही है। हमने रायगढ़ा से नयागढ़ तक ऑपरेशन रोपवे के रूप में (इसी के तहत नयागढ़ रेड किया गया था) महज 8-10 महीने में ही अपना विस्तार किया। नयागढ़ रेड का न सिर्फ सैन्य महत्व था बल्कि राजनीतिक महत्व भी था। क्योंकि इस रेड के पीछे रणनीतिक कारण थे। उसके बाद हमने छत्तीसगढ़ के मानपुर मैदानी इलाके में अपना विस्तार करने के लिए ऑपरेशन विकास चलाया और जनता हमें आमन्त्रित कर रही है तथा उनका आत्मविश्वास ऊंचा है। यदि हम इस तरीके से विस्तारित होते हैं तो निश्चित रूप से हम विकसित होंगे और गुरिल्ला युद्ध को विस्तारित कर पाएंगे। यदि हम इस तरीके से आगे बढ़ें और युद्ध को सफलता पूर्वक फैलाने में कामयाब हो पाए तो दूरगामी तौर पर राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियां बदलेंगी और दबाव में राज्य लड़खड़ा जाएगा। वर्तमान में राज्य स्वेच्छा से सेना पर खर्च कर रहा है लेकिन जैसे-जैसे युद्ध फैलेगा और नए-नए क्षेत्रों में

विस्तारित होगा, दूरगामी तौर पर वह जितना खर्च करेंगे वह उन्हें असफलता की ओर ही ले जाएगा। हम इस रणनीतिक योजना के साथ अपने युद्ध को लड़ रहे हैं।"

अतः मेरे लिए यह विश्वास करना कठिन नहीं था जब सोनू ने यह कहा कि सलवा जुझम के दौर में मिलीशिया और पीएलजीए में जबरदस्त भर्ती हुयी। सोनू ने यह भी रेखांकित किया कि इससे पहले दो बार 1990-91 और 1997-98 में जब स्थानीय शोषकों पुलिस और प्रशासन ने मिलकर "जनजागरण अभियान" चलाया तो उस वक्त भी हमारा आन्दोलन और मजबूत हुआ। मैंने उनसे पूछा क्या इसका यह मतलब है कि इस बार भी जब वे डीके में उनके खुद के अनुमान के हिसाब से ढाई से तीन लाख फौजों का सामना कर रहे हैं तो यही परिणाम निकलेगा। जीएस ने एक रूपक दिया था मधुमक्खी के छत्ते का। उन्होंने कहा कि यदि लाखों-लाख लोग विद्रोह में उठ खड़े होते हैं तो कुछ लाख की यह मजबूत सेना कुछ नहीं कर पाएगी। लेकिन क्या जनता उनके इस आह्वान का उत्तर देगी? वरिष्ठ नेताओं से लेकर सामान्य पार्टी सदस्यों तक में जो आत्मविश्वास दिखायी देता है उससे ऐसा लगता है कि वे यह मानते हैं कि जनता संघर्ष में उतरेगी। बावजूद इसके कि उन्होंने इधर काफ़ी नुकसान सहा है। उनके कई नेता-कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए हैं और उनकी हत्या की गयी है। वह क्या चीज़ है जो उन्हें सुख-दुख में, कामरेडों के खोने में और कुत्सा प्रचार में भी मजबूती से खड़ा रखती है? वे हानियों और धक्कों का सामना कैसे करते हैं? वह क्या चीज़ है जो उन्हें आगे बढ़ने के लिए साहस और आत्मविश्वास देती है? "जनता का प्यार और विश्वास"। यह सामान्य टेक की पंक्ति की तरह है। इसका जिक्र अक्सर उन पर्चों में किया जाता है जो समय-समय पर निकलता रहता है। डीके स्पेशल जोनल कमेटी की तरफ से तीन दिन बन्द (जनवरी 25-27, 2010) पर जो पर्चा निकाला गया उसमें पुलिस और अर्धसैनिक बलों से एक अपील भी शामिल थी जिसमें उन्हें इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए आमन्त्रित किया गया था कि सरकार 'आपरेशन ग्रीन हण्ट' क्यों चला रही है। इस पर्चे में उन्हें याद दिलाया गया था कि वे पूंजीपति और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित में युद्ध चला रहे हैं। सरकार उनसे कह रही है कि 'मारो और पुरस्कार लो' या 'मरो और क्षतिपूर्ति लो'। इस पर्चे में उन्हें उनकी वर्गीय जड़ों की याद दिलायी गयी और उनसे कहा गया कि वे अपने हथियार अपने ही भाइयों के खिलाफ न चलायें और जनता की घृणा के पात्र न बनें। एक दूसरे पर्चे में जो पीएलजीए के भर्ती अभियान (2 दिसम्बर 2009 से 10 फरवरी 2010 तक) के उपलक्ष्य में निकाला गया था उसमें बस्तर के बेरोजगार लड़कों-लड़कियों से अपील की गयी है कि वे सरकारी सुरक्षा बलों में भर्ती न हों। पर्चे में कहा गया था कि यदि कोई पीएलजीए में भर्ती होता है तो "आपको कोई तनखवाह तो नहीं मिलेगी लेकिन भोजन, कपड़ा, व्यक्तिगत जरूरत की चीज़ें जरूर मिलेंगी और जनताना सरकार द्वारा आपकी सहायता की जाएगी। आपको जनता का प्यार और स्नेह मिलेगा। दूसरी तरफ जो सरकारी सशस्त्र सेनाओं में भर्ती होंगे उन्हें तनखवाह मिलेगी, लूटने, हत्या करने, बलात्कार करने का अधिकार मिलेगा लेकिन उन्हें जनता की घृणा भी मिलेगी और उन्हें कोई याद नहीं करेगा। जबकि पीएलजीए में भर्ती होने वाले लोगों की मृत्यु को याद रखा जाएगा। एक दूसरे पर्चे में सरकारी सशस्त्र सेनाओं के लोगों से कहा गया है कि उनका युद्ध उस युद्ध के समान ही है जो विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा हमारी जनता के खिलाफ छेड़ा गया हो। पर्चे के अन्त में उनको सम्बोधित किया गया है जो सरकारी सेनाओं में भर्ती हुए हैं-"सरकार आपको एक जानवर से ज्यादा कुछ नहीं समझती। वास्तव में वह आपको दास समझती है। कभी-कभी आपको कुत्ता भी कहा है (ग्रेहाउन्ड्स), कई बार आपको सांप कहा जाता है (कोबरा) और कई बार बिल्ली बुलाया जाता है (ब्लैक कैट्स)।"

भारी कठिनाइयों के खिलाफ आगे बढ़ने का यह आत्मविश्वास और क्षमता रातों-विकसित नहीं हुयी। यह पिछले तीस सालों की शहादत है, सैकड़ों नवजवान पुरुषों व महिलाओं का निःस्वार्थ काम और कठिन जिन्दगी है जिसने मुट्ठी भर लोगों से विकसित होकर आज एक जनान्दोलन का रूप ले लिया है। अपने को वहां इस रूप में स्थापित कर लेना कि आज दण्डकारण्य आन्दोलन की दूसरी पीढ़ी में मुख्यतः आदिवासी ही हैं। दूसरी पीढ़ी ? एक वरिष्ठ पार्टी सदस्य ने मुस्कराते हुए मुझसे कहा कि तीसरी पीढ़ी भी तैयार हो रही है। मैं नहीं समझ सका इसका क्या मतलब है। मैंने उनसे व्याख्या करने को कहा। उन्होंने कहा कि पिछले साल से पार्टी ने बेसिक कम्युनिस्ट ट्रेनिंग स्कूल शुरू किया है जहां हम 12 से 15 साल के 25-30 बच्चों को 6 महीने के लिए लेते हैं और उन्हें सघन प्रशिक्षण से गुजारते हैं। उन्हें मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद के बुनियादी सिद्धान्तों से परिचय कराया जाता है। इसके अलावा हिन्दी, अंग्रेजी, गणित तथा सामाजिक विज्ञान आदि पढ़ाया जाता है। विभिन्न प्रकार के हथियार व कम्प्यूटर चलाना सिखाया जाता है और उन्हें आरपीसी की एक वर्कटीम के साथ रख कर उनसे व्यवहारिक काम कराया जाता है। उन्हें कुछ हफ्तों तक काम में लगाया जाता है और तब उन्हें पास किया जाता है। इस साल इस योजना को दूसरे डिवीजनो में भी चलाने की योजना है। अन्यथा माओवादी मुख्यतः आदिवासी हैं जो अपनी जातीयता भाषा व जीवन शैली में अपने जातिभाई जैसे ही हैं। निस्संदेह वहां आन्ध्र प्रदेश से आए पार्टी सदस्य हैं और जिनसे मैं मिला भी। यह कहा जाता है कि कोई व्यक्ति एक प्रभावी समूह के बोलने के तरीके और उनकी शारीरिक भाषा को एक समय बाद अपना लेता है। यह एकदम सही है। मेरे लिए यह जानना कठिन था कि कौन बाहर का है और कौन वहीं का है। क्योंकि सभी आमतौर पर एक से दिखते थे और गोण्डी ही बोलते व लिखते थे। मुझे गोण्डी नहीं आती। मुझे हिन्दी के अलावा कोई दूसरी भारतीय भाषा नहीं आती। हां बांग्ला और पंजाबी थोड़ी समझ लेता हूं। लेकिन यह स्पष्ट था कि वहां जो भाषा मुख्यतः बोली और समझी जाती थी - वह थी गोण्डी। कुछ समय ऐसा भी था जब मैंने लोगों को तेलगू में बात करते सुना। यद्यपि विभिन्न कारणों से डीके में तेलगू और हिन्दी विजातीय भाषा नहीं हैं।

उनका आत्मविश्वास इस तथ्य से भी निकलता है कि वहां आधिकांश कैडर स्थानीय हैं। जीएस ने हमें बताया था कि डीके में पार्टी सदस्यों को जो कठिन जिन्दगी जीनी पड़ती है, वह कतई आसान नहीं है। मुझे याद आया कि मुरली ने मुझसे कहा था कि 1980 में डीके में जो दो स्कवैड प्रविष्ट हुआ था, उनमें से सिर्फ दो सदस्य वह और कोसा उसेण्डी बचे हैं। बाकी या तो मारे गए या पार्टी छोड़ दी या जंगल के अन्दर की जिन्दगी से सामन्जस्य नहीं बिठा पाए। जीएस ने कहा कि बहुत से कामरेड जो बाहर से आए उन्होंने कुछ महीनो बाद पूर्णकालिक पार्टी कामों को छोड़ने की इच्छा जाहिर की और जंगल से चले गए। इसका यह भी मतलब है कि बाहर से आए कैडर पार्टी के स्थायी आधार नहीं हैं। पार्टी की जड़ें यहां की जनता में है।

तमाम अपीलों के बावजूद क्या पार्टी खुले में काम नहीं करना चाहती? मुरली ने मुझे बताया कि पार्टी के जनसंगठन भले ही वह रजिस्टर्ड न हों लेकिन वे काम कर रहे हैं। बिना रजिस्ट्रेशन वाले ये संगठन संघर्षों को आगे बढ़ा रहे हैं। और जब भी जरूरत पड़ती है, वार्ता में भाग लेते हैं। जीएस ने हमें बताया कि इस बारे में सजग रहना महत्वपूर्ण है कि यह संघर्ष या संगठन कानूनवाद और अर्थवाद के दलदल में न फंसे और यह भूल न जाए कि जनता को सत्ता दखल के लिए तैयार करना है। साक्षात्कार में उन्होंने नक्सलबाड़ी के आन्दोलन की विभिन्न धाराओं पर भी बात की। और बताया कि कैसे एक के बाद एक कई सेक्शन 'क्षेत्रवार सत्तादखल' के रास्ते से अलग होने लगे और जनता को सशस्त्र बगावत के लिए तैयार करना है या संसद के अन्दर जाकर

उसका पर्दाफाश करना है (बिना भूमिगत ढांचे और सशस्त्र स्क्वैड के) जैसी बातें करने लगे। एक वरिष्ठ साथी से इस बारे में बात करने पर उन्होंने कहा कि खुला काम महत्वपूर्ण है पर शेष कामों की कीमत पर नहीं।

बहस अचानक दूसरी दिशा में मुड़ गयी। पूरे विश्व में, सत्ता दखल के लिए काम करने की वकालत करने वाले और लचीले रूप में एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में सहभागी राजनीति के लिए काम करने की बात करने वाले लोगों के बीच एक वैचारिक बहस चल रही है। पता नहीं किस कारण से पार्टी और यूनियन को एक बन्द और अलोकतान्त्रिक ढांचे के रूप में देखा जाता है। यहां कुछ दिक्कत है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। जीएस ने कहा था कि कैसे आंशिक परिणाम या सुधारों को पहले नज़रअन्दाज कर दियाथा और समस्त जोर अन्तिम लक्ष्य सत्ता दखल पर दिया गया था इस लिए तात्कालिक को दूरगामी से मिलाने की जरूरत है। जिसे पूर्व में नज़र अन्दाज किया गया। इस लिए 'जन अर्थव्यवस्था' को मजबूत करने पर काफी समय खर्च किया जा रहा है।

मैंने उनसे कहा कि क्या वे राज्य द्वारा चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों को अनुमति देंगे। यदि हां तो क्या अपने गुरिल्ला जोन में इसकी अनुमति देंगे। क्या इसका यह मतलब नहीं होगा कि बहुत प्रयासों के बाद अपने द्वारा स्थापित किये शासन को कमजोर करना? उत्तर था कि जहां वे खुद जनता को सहायता पहुंचाने में असमर्थ हैं वहां वे ऐसी किसी भी गतिविधि का विरोध नहीं करते जिससे जनता को फायदा हो। चाहे वह स्वास्थ्य हो शिक्षा हो या रोजगार गारण्टी आदि हो। लेकिन जहां उनका नियन्त्रण है वे जनता को फायदा पहुंचाने वाले सुधार कार्यक्रमों को खुद चलाते हैं। उन्होंने कहा कि वे पुलिस और अर्धसैनिक बलों के रूटीन पेट्रोलिंग में हस्तक्षेप नहीं करते। बिना तैयारी के वे उनसे संघर्ष में नहीं उलझना चाहते। क्या जनताना सरकार के क्षेत्र में चलाए जाने वाले सुधार कार्यक्रम और दूसरी जगहों के सुधार कार्यक्रमों के प्रति प्रतिक्रिया में फर्क नहंी है? जीएस के अनुसार "जहां दुश्मनों के कैम्प हैं, उन क्षेत्रों के गांव में भी क्रान्तिकारी जन कमेटियां हैं। जहां काम चल रहा है। सैकड़ों जनता वहां तालाब बना रही है इसकी पूरी जानकारी कैम्पों में स्थित सुरक्षा बलों को है।" हमें यह बात कई बार बतायी गयी कि माओवादी किसी भी जनपक्षधर सुधारों के खिलाफ नहीं हैं जो उन इलाकों में चलाया जा रहा हो जहां उनका आन्दोलन मजबूत नहीं है या वहां उनका नियंत्रण नहीं है और जहां वे जनता को सुविधा मुहैया कराने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वे इन सुधारों के क्रियान्वयन के लिए लड़ते हैं। मुझे याद आ रहा है झारखण्ड में पार्टी का वह आमन्त्रण जो उसने योजना आयोग की टीम को दिया था और उनसे आग्रह किया था कि वे वहां जा कर उनके राज्य नेताओं से मिलें और ग्रामीण गरीबी के बारे में चर्चा करें। हालांकि जहां वे समानान्तर प्रशासन चलाते हैं और मजबूत हैं वे अपना खुद का सुधार कार्यक्रम, सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित करने के माध्यम से और जन अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के माध्यम से चलाते हैं। यानी वे सुधारों को इस तरीके से चलाते हैं ताकि जनता की सामूहिक ऊर्जा का इस्तेमाल करते हुए उनकी भौतिक स्थिति में सुधार लाया जाए न कि इस तरह कि वे किसी का इंतज़ार करे कि वे आएँ और उन पर उपकार करे। मुझे याद आयी योजना आयोग द्वारा गठित एक्सपर्ट ग्रुप की रिपोर्ट- '[चरमपंथ प्रभावित क्षेत्र में विकास की चुनौतियां](#)'। इसमें कहा गया है कि -"इस रिपोर्ट का उद्देश्य यह दिखाना है कि सरकार संवैधानिक और कानूनी माध्यम से किस तरह असंतोष के कारणों को खत्म कर सकती है और संविधान और कानून द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था में प्रभावित जनता का विश्वास पैदा कर सकती हैं।" राज्य द्वारा जनता के प्रति पैतृक शासन वाला दृष्टिकोण या दयाभाव वाला दृष्टिकोण (जैसा कि योजना आयोग के माध्यम से



अभिव्यक्त हुआ, हालांकि जनता यदि सशस्त्र प्रतिरोध छोड़ देती है तो उनके लिए कुछ सहूलियतें देने की बात भी इसमें कही गयी है) के विपरीत पार्टी जिस लाइन का अनुसरण करती है उसमें सबसे वंचित जनता को इस योग्य बनाया जाता है कि वे संघर्ष करें और अपनी आकांक्षाओं और अपने मुस्तकबिल का निर्माण खुद करें। इन दो लाइनों के बीच अन्तर बहुत निर्णायक है।

मुझे बताया गया कि जहां वे इन सुधारों का स्वागत करते हैं, वहीं वे इस बारे में भी सजग हैं कि ये सुधार प्रतिक्रान्तिकारी अभियानों का भी हिस्सा होते हैं। "दमन और सुधार"- पहले जनता को आतंकित करो ताकि वे सुधारों को सहायता के रूप में देखें और यह विश्वास करें कि कुछ किया जा रहा है। इसका नाम 'दिल और दिमाग को जीतना' या 'डब्ल्यूएचएम' है जिसके तहत बहुत से कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। अतः बीजापुर, दन्तेवाड़ा मलकानगिरी, रायगढ़ा, छतरा, पलामू, हजारीबाग और गया जिले में इस तरह के विभिन्न कार्यक्रमों को जन्मभूमि, वन सुरक्षा समिति, आस्था शिविर, युवा शक्ति, गांव बन्दी, तीन टेन्ट कार्यक्रम आदि नामों से चलाया जा रहा है। यह प्रचार भी किया जा रहा है कि समाजवाद और साम्यवाद अप्रासंगिक हो चुके हैं और ये विचारधाराएं पराजित हो चुकी हैं और क्रान्ति कभी सफल नहीं हो सकती। एक वरिष्ठ पार्टी सदस्य ने कहा कि यह महत्वपूर्ण है कि भारत सरकार इस तरह का प्रचार चला रही है कि जनता को माओवादी खतरे से और साम्यवाद के खतरे से बचाने के लिए हिंसा जरूरी है। इसका यह भी मतलब है कि वह सभी को यह संदेश देना चाहती है कि भारतीय राज्य बहुत मजबूत है और बस यह समय की बात है कि देश को इस 'खतरे' से मुक्त कर दिया जाएगा। लेकिन उसने कहा कि वे तैयार हैं। पार्टी ने सलवा जुझम की असलियत को पहले ही पढ़ लिया था। यह चौतरफा आक्रमण का पहला दौर था।

सोनू ने रेखांकित किया कि सलवा जुझम के पीछे उद्देश्य था-"मछली पकड़ने के लिए पूरे पानी को निकाल देना और रणनीतिक हैमलेट का निर्माण करना। सरकार ने सोचा कि बस अब हम खत्म हो जाएंगे।" उसने कहा कि प्रारम्भ में जब पार्टी ने फासीवादी शब्द का इस्तेमाल किया तो जनता इसे नहीं समझा सकी कि इसका क्या मतलब है। लेकिन सलवा जुझम से वह इसका मतलब समझ गयी। इस लिए सलवा जुझम नकारात्मक रूप से एक अच्छा अध्यापक साबित हुआ। उसने भ्रम दूर करने में काफी मदद पहुंचायी। पार्टी के बहुत से विरोधियों ने अपना विचार बदला जब उन्होंने बड़े पैमाने पर विस्थापन के साथ-साथ आगजनी, लूटपाट और बलात्कार को देखा। दूसरों ने यह अहसास किया कि सलवा जुझम का मतलब उस आन्दोलन को खत्म करना है जिसने उन्हें काफी कुछ दिया है। इसका मतलब जनताना सरकार को नष्ट करना है, उनकी संगठन क्षमता को कमजोर करना है ताकि उनकी ज़मीनों को कारपोरेट घराने को दिया जा सके। यह कतई अतिशयोक्ति नहीं था। याद कीजिए कि इस मसले पर उस रिपोर्ट के आधिकारिक संस्करणने क्या कहा था। ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्ट '[कमेटी ऑन एग्रेरियन रिलेशन्स एन अनफिनिशड टास्क ऑफ लैण्ड रिफार्म](#)' (2009) के लेखकों ने (जिसे अब सरकारी सम्पादकों ने सेंसर कर दिया है) सलवा जुझम के कारणों को व्याख्यायित किया है जो खनन में दी जा रही छूट से भी प्रत्यक्ष तरीके से जुड़ता है।

"आदिवासियों की तरफ से भूमि अधिग्रहण और उनके विस्थापन के प्रति शुरुआती प्रतिरोध (2000 में) आया। भयानक प्रतिरोध के कारण राज्य ने अपनी योजना वापस ले ली। एक तर्क सामने आया-'आप मुरिया लोगों के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते।' यह जीवन और मृत्यु का

सवाल है। मुरिया लोग मौत से नहीं डरते। यदि लौह अयस्क का खनन किया जाना है तो एक नया रुख जरूरी है।

यह नया रुख सलवा जुझम के साथ आया जिसका अर्थ है शांति का शिकार। विडम्बना यह है कि सलवा जुझम महेन्द्र कर्मा के नेतृत्व में चला जो कांग्रेस के टिकट पर निर्वाचित था और विपक्ष का नेता था तथा भाजपा सरकार का उसे पूर्ण समर्थन प्राप्त था। सलवा जुझम में वो मुरिया लोग भी शामिल थे जो सीपीआई माओवादी के कार्यकर्ता या स्थानीय नेता रह चुके थे। और उनके पीछे वे व्यवसायी, ठेकेदार या खनन वाले लोग शामिल थे जो इस रणनीति के सुखद परिणाम का इन्तजार कर रहे थे। सलवा जुझम को सबसे पहले वित्तीय सहायता देने वाले टाटा और एस्सार थे जो 'शान्ति' की खोज कर रहे थे। सलवा जुझम का पहला आक्रमण उन मुरिया गांव पर हुआ जो अभी भी सीपीआई माओवादी से जुड़े हुए थे। यह भाइयों के बीच एक युद्ध के रूप में विकसित हो गया। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार 640 गांव बन्दूक की कीमत पर खाली करा लिए गए और जला डाले गए। परिणाम स्वरूप 3 लाख 50 हजार आदिवासी यानी दन्तेवाड़ा जिले की आधी जनसंख्या विस्थापित हो गयी। उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। उनके बेटे-बेटियों को मार दिया गया। जो जंगल में नहीं भाग पाए उन्हें सलवा जुझम द्वारा चलाए जाने वाले शरणार्थी शिविरों में हांक दिया गया। दूसरे लोग लगातार जंगलों में छिपे रहे या पड़ोस के महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्रों में पलायन कर गये। दन्तेवाड़ा जिले के 640 गांव खाली करा लिए गये। लौह अयस्क से भरपूर इन क्षेत्रों को खाली करा के सबसे ज्यादा बोली लगाने वाले को उपलब्ध हो गया। नवीनतम सूचना यह है कि एस्सार स्टील और टाटा स्टील दोनों इन खाली जगहों पर कब्जा करके इनके खनिज पर नियन्त्रण चाहते हैं।"

### अवांछित नुकसान

बस्तर के अबूझमाड़ क्षेत्र में विवेकानन्द विद्यामन्दिर के नाम से रामकृष्ण मिशन पांच स्कूल चलाता है। ये अकाबेदा, इर्राकभाती, काच्चापाल, कुण्डला और कुतुल में हैं। वे इन स्थानों पर स्वास्थ्य सेवा और राशन की दुकानें भी चलाते हैं। स्कूल तो आज भी चल रहा है लेकिन राशन की दुकान बन्द हो चुकी है और स्वास्थ्य केन्द्र में बहुत कम सुविधाएं रह गयीं हैं। पहले प्रत्येक बुधवार को एक डॉक्टर इस स्वास्थ्य केन्द्र पर आता था। लेकिन 2005 से यह भी बन्द हो चुका है। क्यों? क्योंकि प्रशासन का यह कहना है इन सुविधाओं का लाभ माओवादी भी उठाते हैं। और डॉक्टर नक्सलियों का इलाज करता है। मैंने पूछा क्या आपके वरिष्ठ लोगों ने प्रशासन को यह बताया कि किसी का इलाज करना कोई अपराध नहीं है और यह कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक आदेश में कहा है कि किसी को सिर्फ इस लिए चिकित्सा सुविधा से वंचित नहीं किया जा सकता कि वह चरमपंथ या आतंकवाद का दोषी है। उसने सूखे तरीके से उत्तर दिया कि यह सही हो सकता है लेकिन हमारे और सुप्रीम कोर्ट के बीच कई हजार किमी की दूरी है।

व्यवहार में इसका मतलब यह है कि यहां एक आर्थिक नाकेबन्दी है जो अपने आप में एक युद्ध की कार्यवाही है। इस नाकेबन्दी को पूरे युद्ध क्षेत्र में लागू किया गया है जिससे समूचे माड़ क्षेत्र में कोई भी सप्लाई जैसे राशन या दवा नहीं पहुंच पा रही है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि राशन और दूसरी सप्लाई पर नियंत्रण रखा जा

सके नागरिक क्षेत्रों में लगने वाले साप्ताहिक बाजार को सशस्त्र कैम्पों में स्थानान्तरित कर दिया गया है। इसका मतलब है कि नागरिकों के आने और जाने पर कड़ी नज़र रखी जा सकेगी। आरकेएम स्कूल स्टाफ के एक सदस्य ने (जो इस बात को लेकर डर रहा था कि उसका नाम सामने आने से कहीं वह किसी मुसीबत में न फंस जाए) मुझे बताया कि सितम्बर 2008 से उन्हें यात्रा के लिए एक विशेष पास रखना पड़ता है जिसे एसपी नारायणपुर द्वारा जारी और हस्ताक्षरित किया जाता है। चेकपोस्ट पर उनके नाम दर्ज किये जाते हैं और यह भी दर्ज किया जाता है कि वे कहां और क्यों जा रहे हैं। प्रवेश करते समय उन्हें सभी सामग्री दिखानी पड़ती है और उन्हें आश्वस्त करना पड़ता है कि ये सामान उन्हें दिये गये चालान के अनुरूप हैं और फिर अपनी जांच करानी पड़ती है। सामान खरीदे जाने वाले कैम्पों में उन्हें प्रत्येक गांव वासी की तरह यह दर्ज कराना होता है कि वे कितने सदस्य हैं। और फिर उसी हिसाब से उन्हें राशन दिया जाता है। कैम्प में वे इस लिए भी आसान शिकार होते हैं क्योंकि इन कैम्पों में भयंकर एसपीओ आते जाते रहते हैं और उनका सिर्फ एक शब्द किसी भी व्यक्ति को पकड़े जाने, पीटे जाने और जेल में डाले जाने के लिए पर्याप्त है। और हो सकता है कि बाद में घूस देने पर ही उन्हें रिहा किया जाए। उसने मुझे बताया कि एक बार दो दूध बेचने वालों को एसपीओ के कहने पर पकड़ लिया गया और तब सम्बन्धित अधिकारी ने उन्हें छोड़ने के लिए 2000 रु. घूस मांगे उन दोनों के पास सिर्फ 500 रुपए थे। तब अफसर ने उदारता दिखाते हुए 500 रुपए लेकर उन्हें जाने दिया और चेतावनी दी कि वे 'अच्छे' नागरिक बने और माओवादियों के कहने में न आएंगे। मैंने गांव वालों से पूछा कि उन्हें राशन कैसे मिलता है? उनमें से अधिकांश ने कहा कि वे वहां जाना पसंद नहीं करते क्योंकि उन्हें परेशान किया जाता है और उन्हें उससे बहुत कम राशन दिया जाता है जिसके कि वे हकदार हैं क्योंकि वे यह मानते हैं कि हम यह राशन माओवादियों के लिए ले जा रहे हैं। कैम्प के नज़दीक आने पर उन्हें एक पंक्ति में दो तारों के बीच गलियारे में चलना पड़ता है। आरकेएम के लोगों ने भी कहा कि उन्हें उस वक्त भी अपने वाहनों से उतरना पड़ता है जब उनके 'महाराज' यात्रा से लौटते हैं। आप शिकायत क्यों नहीं करते मैंने उनसे कहा। उन्होंने कहा कि उन्हें सावधान रहना पड़ता है। यदि हम शिकायत करते हैं तो हमसे कहा जाता है कि हम माओवादियों की तरह बात कर रहे हैं और हमें चुप रहने को कहा जाता है। यदि हम फिर भी अड़े रहते हैं तो हमसे कहा जाता है कि वे हमारे माओवादियों के साथ सम्बन्धों को जानते हैं और वे हम पर नज़र रख रहे हैं। ज्यादा स्मार्ट बनने की कोशिश मत करो। मैंने कहा कि माओवादियों के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है? क्या वे तुम्हें आतंकित नहीं करते? उन्होंने कहा शुरुआती वर्षों में हमें उनसे कुछ दिक्कतें हुयी थीं लेकिन बाद में उन्होंने हमें परेशान नहीं किया। वस्तुतः उन्होंने हमारे अनुरोध पर हमारे पास आना भी बन्द कर दिया। जब हमने उनसे कहा कि आपके यहां आने से प्रशासन के लोग हमें नक्सली होने का दोषी ठहराते हैं। वे सहायता के लिए नहीं कहते ? उन्होंने कहा नहीं। वे यह जानते हैं कि हमारे पास सामानों की काफी कमी है और राशन की दुकान और स्वास्थ्य केन्द्र बन्द हो चुके हैं। पार्टी ने उनसे कहा कि वे कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे। बस वे अपने स्कूलों में सशस्त्र पुलिस को कैम्प बनाने की अनुमति न दें।

उसने कहा कि अधिकारी लोग हमारे खिलाफ जो एक आरोप लगाते हैं वह यह है कि आरकेएम का स्कूल वहां कैसे चल पा रहा है जबकि सरकारी स्कूल बन्द हो चुके हैं। मैंने कहा कि हां में खुद भी यह बात नहीं समझ पा रहा हूं। उसने मुझसे कहा आपने देखा है सरकारी स्कूल कैसे होते हैं। कुछ तो स्कूल कहलाने के लायक ही नहीं हैं। बस देखिये कि वे कैसे लगते हैं और इस तथ्य पर ध्यान दीजिये कि बहुत से अध्यापक बिना स्कूल आए ही अपनी तनखवाह उठा रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि क्या इसका यह मतलब है कि माओवादी उन्हें धमकी

नहीं देते? उसने कहा देखिये, अब आप मुझे परेशानी में डाल देंगे। परन्तु जो मैं कहना चाहता हूं वह यह कि यदि एक व्यक्ति बिना कुछ किये अपनी तनख्वाह उठाता है और माओवादियों की धमकी का बहाना बनाता है तो इससे आप क्या निष्कर्ष निकालेंगे। प्रशासन के लिए भी यह उपयोगी है क्योंकि इससे उन्हें माओवादियों के प्रतिप्रचार युद्ध चलाने के लिए चारा मिलता है और वे यह घोषणा करते हैं कि माओवादी लोग सरकारी स्कूलों को नहीं चलने दे रहे हैं। लेकिन उसने यह भी जोड़ा कि वह अध्यापकों को दोष नहीं देता क्योंकि बहुत से स्कूल केवल नाममात्र के स्कूल हैं। मैंने कहा कि यह दावा किया जाता है कि पिछले चार वर्षों में 385 छात्रावास वाले स्कूलों को बस्तर में माओवादियों द्वारा नष्ट कर दिया गया। क्या वह इसके बारे में कुछ जानता है? उसने मुस्कुरा के जवाब दिया कि मैं नहीं जानता कि बस्तर में इतने स्कूल हैं। मैंने उसे और परेशान करना ठीक नहीं समझा। लेकिन मुझे इन्डियन एक्सप्रेस में छपी (5 दिसम्बर 2009, नई दिल्ली संस्करण) एक स्टोरी की याद आई। इसमें झारखण्ड चुनाव के दौरान तमार निर्वाचन क्षेत्र में नियुक्त नागा सशस्त्र बल के एक जवान को उद्धृत किया गया था कि- "हमने सुना था कि यह क्षेत्र माओवादियों का गढ़ है। हमने उन्हें कहीं नहीं देखा। लेकिन जिन स्कूलों में हम शरण लिये हुए थे, वे मच्छरों से भरे हुए थे। वहां पीने का पानी नहीं था। हमें हैण्ड पम्प के पानी को उबाल कर पीना पड़ता था। लेकिन इससे भी कोई फायदा नहीं होता था।" वे लोग जो स्कूलों के नष्टहोने पर विलाप करते हैं या सैनिकों की रहने की स्थिति पर आंसू बहाते हैं उन्हें थोड़ा इस पर भी विचार करना चाहिए कि उन स्कूली बच्चों की स्थिति क्या होती होगी जिन्हें इन भयानक परिस्थितियों में पढ़ाया जाता होगा। इसके अलावा यदि इनका इस्तेमाल सैनिकों के कैम्प के रूप में किया जाता है तो फिर जिम्मेदारी किस पर आती है?

यहां से लौटते हुए मैं यह सोचने लगा कि युद्ध क्षेत्र में प्रशासन के आदमी के सामने उठ खड़ा होना किस तरीके से एक अवज्ञा समझा जाता है। और वे इसे कभी बर्दाश्त नहीं कर पाते। फिर भी मुझे आरकेएम वाले व्यक्ति के नियंत्रित बातचीत से भी काफी जानकारी मिल गयी। यह निश्चित है कि आरकेएम भयानक दबाव में है। हालांकि मैं यह नहीं समझ पाया कि ये लोग जो ईश्वर में विश्वास रखते हैं वे इन दुनियावी चीजों की धमकी और उन्हें झुकाने के प्रयासों से क्यों डर जाते हैं। क्या उनके पास की भौतिक सम्पत्ति ही वह कारण है जो उन्हें सरकारी धमकियों का शिकार बनाती है? मेरा मतलब यह है कि यदि उनके भगवान की सेवा में उनका आह्वान 'जनता की सेवा करो' है तो आरकेएम के वरिष्ठ लोग और इस सन्दर्भ में इसाई या दूसरे मिशनरी लोग युद्ध क्षेत्र में दवाओं की कटौती और राशन की दुकान की बन्दी के खिलाफ विरोध क्यों नहीं करते।

**यह सब कैसे शुरू हुआ था?**

जो कुछ भी मैंने पढ़ा सुना या देखा और जिससे भी मैं मिला उसने मेरे अन्दर यह जानने की उत्सुकता बढ़ा दी कि आन्दोलन ने यहां जड़ कैसे जमायी। यह जानकर ही हम यह समझ सकते हैं कि पिछले 30 साल में हमने क्या हासिल किया है। 2004 से पार्टी ने डीके के बाहर विस्तार किया है। इसमें शामिल है पुराना बस्तर (छत्तीसगढ़ के पांच जिले) तथा गढ़चिरौली (महाराष्ट्र) और मानपुर व मैनपुर क्षेत्र जो कि मुख्यतः मैदानी क्षेत्र है। प्रशासनिक कारणों से पार्टी ने अपने कार्यक्षेत्र को दस डिवीजनों में बांटा है: बस्तर क्षेत्र (इसमें बस्तर के पांच जिले कांकेर, बीजापुर, दन्तेवाड़ा और जगदलपुर शामिल हैं) को छः डिवीजनों में बांटा गया है। जबकि गढ़चिरौली को दो डिवीजन में बांटा गया है। इसके अलावा मानपुर व मैनपुर को मिलकर दस डिवीजन बनता है। पूरे डीके क्षेत्र में कोया व दोरला आदिवासी मुख्य आदिवासी समुदाय हैं। इसके अलावा हल्बी, बतरा और

प्रधान आदिवासी समुदाय भी हैं। यहां कुछ दलित समुदाय और महाराष्ट्र का महार समुदाय भी अच्छी खासी संख्या में है। इसके अलावा गैर आदिवासी समुदाय जैसे साहू भी यहां रहते हैं। कोया और दोरला समुदाय मिलकर गोंड कहलाते हैं और इन्हीं के नाम पर गोंडवाना नाम पड़ा है। गोंड समुदाय की जनसंख्या लगभग 70 लाख है जो मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उड़ीसा और आन्ध्रप्रदेश के भागों में रहते हैं। आन्दोलन करीब 60 हजार वर्ग किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है जहां डीके पार्टी का आठ डिवीजनों में नियन्त्रण है। इसके प्रभाव में लगभग 45 से 50 लाख जनसंख्या निवास करती है। एक वरिष्ठ नेता सोनू ने हमें बताया कि इस क्षेत्र की जनता अपने पूरे इतिहास में शोषण के खिलाफ और अपनी जमीन व जीविका के लिए लड़ती रही है। शेष भारत से अलग, इस आदिवासी जनता में, आदिवासी परम्पराओं के कारण कुछ हद तक जनवादी माहौल है। इन लोगों ने दमन के सामने कभी समर्पण नहीं किया। हमेशा उससे लड़े। वस्तुतः 1825-1964 के बीच विभिन्न आदिवासी नेताओं के नेतृत्व में 10 से 11 विद्रोह हुए जो इतिहास में दर्ज हैं। पार्टी के इस क्षेत्र में प्रवेश से लगभग 16 साल पहले 1964 में बस्तर की जनता अपने राजा के नेतृत्व में तत्कालीन कांग्रेसी सरकार के खिलाफ विद्रोह में उठ खड़ी हुयी थी। इसके बाद 15 सालों की शांति के बाद 1980 में हमने उस क्षेत्र में प्रवेश किया। पीडब्ल्यू का दो स्कवैड 1980 में डीके में प्रविष्ट हुआ। इस तरह से इसकी शुरुआत हुयी। मुरली 1980 में डीके में प्रवेश करने वाले पहले स्कवैड के सदस्य थे। उनके अनुसार -"नक्सलबाड़ी के धक्के के पश्चात आन्ध्र प्रदेश में करीम नगर वा आदिलाबाद में किसान आन्दोलन शुरू हो गये। 1977 में पार्टी ने गांव चलो अभियान आयोजित करने का निर्णय लिया। इसके अनुसार 1978 में आन्ध्रप्रदेश के तटीय क्षेत्र तेलंगाना में एपीआरएसयू तथा आरवाईएल के छात्रों व नौजवानों और पार्टी के पेशेवर लोगों ने गांव चलो अभियान की तैयारी के लिए 10 दिनों का राजनीतिक स्कूल आयोजित किया। गांव के स्तर पर सामन्तवाद के खिलाफ जनवादी क्रान्ति का एजेण्डा था और रैली, पोस्टर व पर्चों के माध्यम से गांव वालों का आह्वान किया गया।" उस क्षेत्र के वर्ग विश्लेषण का भी कार्यभार लिया गया। गढ़चिरोली में सूदखोरों का ज्यादा शोषण नहीं था। बल्कि जंगल विभाग का शोषण ज्यादा था। इसके अलावा दूसरे अन्तरविरोध भी थे लेकिन प्राथमिक अन्तरविरोध राज्य बनाम जनता का था। बस्तर में भूमि समस्या थी। यहां जंगल में रहनेवाले लोगों और जंगल विभाग के साथ अन्तरविरोध था। यहां आन्ध्रप्रदेश के आदिलाबाद के मुकाबले कम शोषण था। यद्यपि आदिवासी वर्ग में विभाजित थे, लेकिन यहां अन्तरविरोध तेलंगाना के मैदानी इलाकों जैसे तीखा नहीं था। यहां वर्ग समाज था लेकिन आदिवासी परम्परा के कारण मैदानी इलाकों से अलग यहां के मुखिया/मंजिस लोगों का शोषण तीखा प्रतीत नहीं होता था। भाषा का अवरोध कैसा था? उन क्षेत्रों में जहां हमने सबसे पहले प्रवेश किया, तेलगू बोली और समझी जाती थी। बस्तर में भी और साथ ही गढ़चिरौली की तरफ भी। जनता की भाषा सीखना और इस सन्दर्भ में गोण्डी सीखना नक्सलबाड़ी आन्दोलन के हिस्से के तौर पर हमारी प्राथमिकता थी। भाषा सीखने में थोड़ा वक्त लगा। लेकिन जैसा कि मुरली ने कहा कि यदि जनता के साथ रहने और उनके बीच काम करने की आपकी इच्छा बलवती है तो आप भाषा आसानी से सीख सकते हैं।

जांच पड़ताल ने पार्टी को यह निर्णय करने में सहायता पहुंचायी कि मुख्य अन्तरविरोध क्या है। राज्य के वनविभाग के तहत दमन के लम्बे इतिहास में यह मुख्य अन्तरविरोध राज्य बनाम जनता था। सोनू ने कहा कि पार्टी पर जनता को भरोसा बनाने में थोड़ा वक्त लगा। पहली चीज़ जो पार्टी ने की और जिसके कारण उन्हें काफी तारीफ मिली, वह वही बात थी जो कोबाड गांधी ने अपने बीबीसी साक्षात्कार में कहा था-हमने गांव वालों

से पानी उबाल कर पीने को कहा। जिसके कारण बाल मृत्युदर 50 प्रतिशत कम हो गयी। जनता अब पार्टी को ध्यान से सुनने लगी।

विश्वास कैसे जीता गया? इस क्षेत्र में जो पहला संघर्ष हुआ वह जंगल विभाग के खिलाफ था। क्योंकि यहां प्राथमिक समस्या भूमि और जंगल के उत्पादों की थी। वन विभाग के पास यहां बहुत जमीन थी। और वह जंगली उत्पादों जैसे तेंदू पत्ता, इमली, बांस आदि पर भी अपना नियंत्रण रखता था। सोनू ने कहा कि हम यह जानते थे कि जनता और आदिवासी मुखियाओं के बीच अन्तरविरोध है। जनता उनके खिलाफ कुछ भी कहने से हिचकिचाती थी। वे हमारे बारे में ज्यादा नहीं जानते थे। और शायद इस बात से डरते थे कि यदि पार्टी उन्हें अपने हाल पर छोड़ देगी तो उन्हें अपने मुखिया के बदले की भावना का सामना करना पड़ेगा। इस लिए शुरुआती वर्षों में उन्होंने समूची आदिवासी जनता बनाम जंगल विभाग को मुख्य मुद्दा बनाया। लेकिन उस वक्त भी (और यह हमारी पार्टी और सीपीआई एमएल की दूसरी शाखाओं के बीच महत्वपूर्ण अन्तर था) हमने उनके वर्गीय प्रश्नों को अलग से रेखांकित किया और जिसे जनदिशा कहते हैं उसे लागू किया। अतः पार्टी ने आदिवासियों में सबसे गरीब लोगों को लामबन्द करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस प्रक्रिया में सबसे ज्यादा शोषित आदिवासी न सिर्फ हमारा आधार बने बल्कि समय के साथ वे नेतृत्व में भी आए। शुरुआती जन संगठन किसान संगठन के रूप में सामने आया जिसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। बाद में महिला मुक्ति के सवाल पर अलग महिला संगठन अस्तित्व में आया। पार्टी ने जो जन लामबन्दी की उसके आरम्भिक मुद्दों में से एक था-तेंदू पत्ता संग्रह और बांस की कटाई में मिलने वाली मजदूरी। इस मुख्यतः अविकसित क्षेत्र में ठेकेदार बहुत कम मजदूरी देते थे। यह सरकार द्वारा निर्धारित दर से भी कम था। 1981 से ही इसके खिलाफ पार्टी ने आदिवासी किसानों को लामबन्द करना शुरू कर दिया था।

इन संघर्षों के दौरान ही जनता ने जब देखा कि पार्टी सदस्य आन्दोलन में जंगल विभाग व ठेकेदारों के खिलाफ किस तरह से काम कर रहे हैं तो उनका पार्टी पर भरोसा कायम हुआ। मुरली ने कहा कि गढ़चिरौली क्षेत्र में बल्लारपुर पेपर मिल के पास बांस के जंगलों का लीज था और वे 6 बण्डल का (प्रत्येक बण्डल में 20 बांस होते हैं) महज 1 रुपया देते थे। उन्होंने कहा कि पहले प्रथा यह थी कि कम्पनी का एजेण्ट मुखिया से मिलता था और एक व्यक्तिगत समझौते में इन सबके रेट तय कर देता था। और इस तरह से मूल्य तय हो जाता था। आम आदिवासी का इसमें कोई दखल नहीं था। यह 1983 तक चला। उसके बाद पार्टी ने आन्दोलन शुरू किया जिसके कारण मूल्य 1 रुपया प्रति तीन बण्डल हुआ फिर 1984 में 1 रुपया प्रति दो बण्डल हुआ और आज यह 7 रुपया प्रति बण्डल है। इसी प्रकार से एक बण्डल तेंदू पत्ता (एक बण्डल में 70 पत्ती होती है) का मूल्य 3 पैसा था। जो आज बढ़कर 1 रुपए से ज्यादा हो गया है। इन संघर्षों और सफलताओं ने जनता का विश्वास जीतने में पार्टी की मदद की। ये संघर्ष दैनिक मूल्य संघर्ष के रूप में थे। मुरली ने गर्व से कहा कि जहां भी आदिवासी पार्टी के नेतृत्व में संगठित हैं वहां अधिकांश जगहों पर वे न्यूनतम वेतन से कहीं ज्यादा कमा रहे हैं।

कम्पनी मैनेजर्स या ठेकेदारों से कैसे निपटा जाता है? मैंने उनसे पूछा। मुरली ने कहा कि मैनेजर्स को यह समझने में कुछ वर्ष लगे कि वे पार्टी को नजरअन्दाज नहीं कर सकते या अपने लिए बेहतर सौदे के लिए किसी और से समझौता नहीं कर सकते। इसके बाद ही घूस का प्रस्ताव आने लगा। एक मीटिंग में एक एजेण्ट ने हमसे कहा कि पार्टी कार्यकर्ताओं ने आदिवासियों का कल्याण तो कर दिया, अब वे अपने कल्याण के बारे में

क्यों नहीं सोचते। मुरली ने कहा कि पार्टी कार्यकर्ता ने उस एजेण्ट से कहा कि तुम सब 'स्वामी' के लिए काम करते हो तुम खुद स्वामी नहीं हो। फिर तुम लोग अपने स्वामी के प्रति इतने वफादार क्यों हो। यदि तुम लोग आदिवासियों को समुचित दाम देते हो तो इसमें तुम्हारा क्या नुकसान है। यदि तुम्हारे पास हमें घूस देने के लिए धन है तो निश्चित ही तुम्हारे पास आदिवासियों को समुचित दाम देने के लिए धन जरूर होगा। इस मुठभेड़ के बाद उन एजेण्टों ने हमें घूस का प्रस्ताव देना बन्द कर दिया।

इन सफलताओं ने पार्टी की सुदृढीकरण और विस्तार की आधारशिला रखी। सोनू ने चिन्हित किया कि जब आदिवासी पार्टी में भर्ती होते हैं तो वे एक-एक करके भर्ती नहीं होते हैं। लगभग पूरा गांव ही लामबन्द हो जाता है। यह उनकी सामूहिक कार्यवाइयों की परम्परा के कारण है। इसके बाद ही जनता ने अपने आदिवासी मुखिया (जैसे माजिस और मुखिया) के साथ आ रही अपनी समस्याओं को हमसे बांटना शुरू किया। 1984 में डीके में आन्दोलन के समन्वय के लिए एक समिति (फॉरेस्ट लायजन कमेटी) का गठन किया गया। 1987 में एक राज्य कमेटी चुनी गयी। लेकिन केन्द्रीय स्तर की कमेटी के अभाव में इसने आन्ध्र प्रदेश राज्य कमेटी के तहत काम किया। 1989 में पूरे डीके के लिए दण्डकारण्य आदिवासी किसान मजदूर संगठन के रूप में आदिवासी किसान संगठन बनाया गया। आज इसकी सदस्य संख्या 1 लाख से ज्यादा है। इस संगठन के तहत महिला और पुरुषों ने अपने भूमि अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और 'जमीन जोतने वाले को' के नारे के तहत विशेष तौर से भूमिहीन किसानों को संगठित किया गया।

### **भूमि का सवाल**

भूमि का सवाल बहुत गम्भीर समस्या है। आदिवासी किसानों से वनविभाग बहुत से गैर कानूनी वसूलियां करता था। इसके अलावा उन्हें अपने मुखिया के प्रभुत्व का भी सामना करना पड़ता था। उन्हें अपने मुखिया की जमीन पर काम करना होता था और उस पर काम पूरा होने के बाद ही वे अपनी जमीन पर काम कर सकते थे। माजिस, पटेल, सरपंच आदि के पास काफी जमीन होती थी। और उनके आदेशों का पालन करने से उन्हें शराब बकरी आदि के रूप में जुर्माना भरना पड़ता था। और कुछ मामलों में तो उन्हें सामाजिक बहिष्कार का भी शिकार होना पड़ता था। यह उन दोनों क्षेत्रों में लागू था, जहां स्थायी खेती होती थी और जहां पेण्डा खेती (झूम खेती) होती थी। बुनियादी तौर पर इसका मतलब यह है कि आदिवासी एक फसली खेती पर निर्भर रहते थे। लेकिन वे मुखिया के खेतों में काम कर चुकने के पश्चात ही अपने खेतों में काम कर सकते थे। अतः जब वे अपने खेतों में काम शुरू करते थे तब तक मानसून खत्म होने को होता था। इससे पहले से ही खराब उनकी स्थिति और भी अनिश्चित हो जाती थी। इससे उनका उनके मुखिया के साथ रिश्ता बंधुआ मजदूर का हो जाता था। इसके अलावा भूमिहीन या बहुत कम जमीन वाले आदिवासी बहुतायात में थे। जमीन की कमी या पैदावार की कमी उन्हें कृषि मजदूर की ओर ढकेल देती थी। उन्हें या तो नौकर (स्वतन्त्र मजदूर) के रूप में काम करना होता था जहां उन्हें 'काबादी' के रूप में मौसमी वेतन मिलता था या फिर किसी भूस्वामी के यहां बंधुआ मजदूर के रूप में काम करना होता था जहां उन्हें वेतन के रूप में भोजन मिलता था। (देखिए, [व्हेन द स्टेट मेक्स वार ऑन इट्स ओन पीपुल: वायलेशन ऑफ पीपुल्स राइट्स इयरिंग द सलवा जुझ](#) का 'बैकग्राउण्ड' अध्याय - एपीडीआर, आईएपीएल, पीयूसीएल, पीयूडीआर द्वारा जनवरी 2006 में प्रकाशित, ) इसके साथ ही पेण्डा या झूम खेती को वन विभाग ने अबूझ माड़ के अलावा और जगहों पर प्रतिबन्धित कर दिया था। कम पैदावार देने वाली स्थायी खेती में कोई सुधार नहीं किया गया जिसके कारण उन्हें भयानक स्थितियों में ढकेल दिया गया।

सोनू ने गर्व से कहा कि आज यहां भूमिहीन किसान लगभग नहीं के बराबर हैं। जबकि शुरू में यहां इनकी संख्या काफी मात्रा में थी। तीन लाख एकड़ वन भूमि पर हमने कब्जा किया। अतः गांव में पहला संघर्ष हमने जमीन आन्दोलन के इर्द-गिर्द चलाया। आदिवासी मुखियाओं के पास काफी जमीनें थीं। लेकिन एक बार जब हमने वन भूमि के साथ-साथ इनकी जमीनों पर भी कब्जा कर लिया तो इस क्षेत्र में रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठ गया। शुरूआती वर्षों में यहां भोजन की भी काफी कमी थी। लेकिन आज जनता के पास दो वक्त का भोजन है और उनकी अपनी जमीनें हैं। अतः वन विभाग के खिलाफ संघर्ष और आदिवासी मुखियाओं के खिलाफ संघर्ष संयुक्तरूप से चलाया गया।

लेकिन जमीन बांटना एक चीज़ है और यह सुनिश्चित करना कि खेती समृद्ध हो एकदम अलग बात है। पूरे बस्तर और गढ़चिरोली क्षेत्र में सिर्फ दो प्रतिशत जमीन सिंचित है। आन्दोलन ने खुद गांव स्तर पर सिंचाई के लिए तालाब बनाना शुरू किया। इसके साथ ही एक नई परिघटना कोआपरेटिव व्यवस्था के विकास के रूप में शुरू हुयी। तीन से चार परिवार मिल कर जमीन को जोतने लगे। यहां तक कि घर बनाने या दूसरे कामों में भी 11 सदस्यों की कोऑपरेटिव टीम गठित की गयी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जनताना सरकार के संविधान में निम्न बातें लिखी हैं। -"हालांकि यहां भूमि पर निजी स्वामित्व है लेकिन जनताना सरकार, भूमि के समतलीकरण में, भूमि जोतने में, बुआई में, बीज छींटने में कटाई में सब्जी पैदा करने में फल, मछली, पैदा करने व पशुपालन में और इस तरह के दूसरे खेती के या खेती से जुड़े कामों में परस्पर श्रम सहयोग द्वारा सामूहिक काम को प्रोत्साहन देगी। अतः यह सहकारी आन्दोलन को विकसित करेगी। यह उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने पर जोर देगी ताकि जनता की अन्न की जरूरतों को पूरा किया जा सके। यह खेती के विकास को महत्व देगी। सामूहिक भूमि, सामूहिक वृक्षारोपण, सामूहिक तालाब, मछली पालन और इस तरह की दूसरी चीज़ें इस विभाग (खेती) के नियन्त्रण में होंगी।

ये परस्पर श्रम सहकार या वर्ग टीम वर्गीय दृष्टिकोण से बनाए जाते हैं। "सबसे गरीब किसान परिवारों को धनी किसानों के साथ रखने का मतलब है कि जब गरीब किसान अपना खेत जोतने जाएंगे तब तक मानसून खत्म हो चुका होगा।" सहकारी व्यवस्था जिस तरह से विकसित हुयी है, उसने सामूहिक एकता की भावना को विकसित किया है। यहां अब किसानों के पास जमीन है, सिंचाई की कुछ सुविधा भी उपलब्ध है, जिसके कारण से जीवन स्तर में उल्लेखनीय सुधार आया है। कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी एक महत्वपूर्ण बात है। विशेषतौर पर विकास की असमानता को खत्म करने के सन्दर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ क्षेत्र, दूसरे क्षेत्रों से अपेक्षाकृत ज्यादा विकसित हैं और कुछ क्षेत्रों में पार्टी दूसरे क्षेत्रों से ज्यादा समय से काम कर रही है। इसके अलावा कुछ क्षेत्रों में 'पेण्डा' अभी भी जारी है। जबकि कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां खेती के लिए ट्रैक्टर का भी इस्तेमाल होता है। इन दोनों के बीच वे क्षेत्र हैं जहां स्थायी खेती होती है। यहां जोतने के लिए बेलचे का इस्तेमाल होता है जो ज्यादा गहराई से मिट्टी को नहीं पलट पाता। कुछ दूसरी जगहों पर जोतने के लिए पशुओं का इस्तेमाल होता है। (माड़ जाते वक्त जो प्लाटून मेरे साथ था, उसमें दो सदस्य ऐसे थे जिन्होंने कभी भी दूध या दही का स्वाद नहीं चखा था क्योंकि वे जिस क्षेत्र के थे वहां पशु नहीं थे)। खेती को उन्नत करने की नीति के तहत जनताना सरकार ने माड़ क्षेत्र में 106 जोड़ी बैल मंगाया। उसमें से 14 मर गए और 92 बचे। अब उन गांव के लोगों को जो स्थायी खेती की अपना चुके हैं, यह सिखाया जा रहा है कि जुताई कैसे करनी है। और पशुओं को



भी जोतने में पारंगत किया जा रहा है। लेकिन स्थानीय आरपीसी सदस्य नरसिंह और कुम्मा ने मुझे कई सामूहिक फार्म दिखाते हुए यह बताया कि पेण्डा खेती कई मामलों में स्थायी खेती के प्राथमिक रूप से बेहतर है। पेण्डा के साथ एक लाभ यह है कि न सिर्फ इसमें उत्पादकता ज्यादा होती है बल्कि इसमें कोहला और कोसरा अनाज के साथ-साथ ही दूसरी कई प्रकार की फसलें भी पैदा की जा सकती हैं।

### **महिलाएं: अन्धविश्वास, पितृसत्ता और राज्य के खिलाफ**

जमीन के सवाल के साथ महिलाओं की मुक्ति का सवाल भी जुड़ा हुआ है। महिलाओं की भूसम्पत्ति में कोई हिस्सेदारी नहीं होती। न ही शादी के बाद वे समारोहों और अनुष्ठानों में भाग लेने के लिए एक गांव से दूसरे गांव स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकती हैं। माहवारी के समय में उन्हें गांव से बाहर रखा जाता है। और मीटिंगों में उनकी उपस्थिति को हतोत्साहित किया जाता है। क्रान्तिकारी आदिवासी महिला संगठन के उदय का मतलब था कि इन सवालों का उठाया जाना। केएएमएस ने घोटुल के मुद्दे को उठाया और इसे खत्म करने के लिए एक बहस छेड़ी। घोटुल एक ऐसी व्यवस्था बन चुकी थी जहां महिलाएं पुरुषों को अपनी सेवाएं देने को बाध्य होती थीं। 6 वर्षों के अनवरत प्रचार के बाद यह प्रथा खत्म हुयी, जहां युवा लड़कों (इसके तहत इन्हें अपनी पसंद की लड़कियों के साथ समय गुजारने का एक तरीके से लाइसेंस मिल जाता था) के साथ-साथ आदिवासी मुखिया, धनी किसान और बाद में वन विभाग और पुलिस के लोग भी आदिवासी नवयुवतियों का शोषण करते थे। यहां जो बात महत्वपूर्ण है वह यह है कि पार्टी ने कहीं भी आदेश जारी नहीं किया। उन्होंने अपने विचारों को प्रचारित किया और बहस का समर्थन करते हुए कुछ समय में इन सुधारों पर सहमति बनाने में कामयाब हो गये। अतः घोटुल परम्परा अदृश्य नहीं हुयी बल्कि इसका रूपान्तरण हो गया।

विषयान्तरण करते हुए एक सैनिक ने मुझसे उस वक्त पूछा जब हम माड़ में थे-"दादा क्या आप वह सामने वाला खेत देख रहे हैं।" मैंने कहा हां देख रहा हूं। उसने कहा-"यह खेत हमने साफ किया है। और हमी ने इसकी सीमाएं बनायी हैं। फिर हमने गांव वालों से कहा कि वे इस पर सामूहिक रूप से खेती करें। यह ध्यान के लिए बहुत अच्छी जमीन है। लेकिन गांव वाले डर गए और उन्होंने कहा कि यह जमीन 'देवा' की है और यदि हम इस पर खेती करेंगे तो बीमार पड़ सकते हैं।" तब इसे किसने जोता, मैंने पूछा। उसने कहा "हमने जोता, हमारे प्लाटून ने। और अब हम आशा करते हैं कि गांव वाले इसे देखेंगे और यह भी देखेंगे कि हमारा कुछ नुकसान नहीं हुआ तो वे अगली बार धान की खेती करेंगे।" इसी तरह क्षेत्रीय आरपीसी के पार्टी प्रतिनिधि नीति ने कहा कि अक्सर जब लोग बीमार पड़ते हैं तो वे कहते हैं कि उन्हें इलाज के लिए 'ओझा' के पास जाना है। हम उन्हें नहीं रोकते। हम उनसे कहते हैं कि ठीक है ओझा के पास जाओ लेकिन अपनी दवा जरूर खाना। और वे ऐसा ही करते हैं। यदि वेयह विश्वास करते हैं कि वे ओझा के कारण ठीक हुए तो भी हमारे लिए ठीक है। हम उनकी दवाओं से मदद तो कर सके। हम तो यह जानते ही हैं कि वे किसके कारण ठीक हुए।

महिलाएं आन्दोलन का बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। और इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है। लेकिन अभी भी यह 50 प्रतिशत के नीचे है। पार्टी चाहती है कि यह संख्या 50 प्रतिशत तक पहुंच जाए। अभी यह 40 से 45 प्रतिशत के आसपास है। लेकिन एक नौजवान महिला को कमाण्डर के रूप में या जनताना सरकार के नेतृत्वकारी कैडर के रूप में देखना उल्लेखनीय है। हालांकि वे सारी समस्याएं अभी सम्बोधित नहीं की गयी हैं जिनका महिलाओं को सामना करना पड़ता है। उनके द्वारा उठायी गयी सभी मांगें अभी पूरी नहीं हो पायी हैं।

जैसा कि महिला कामरेड खुद कहती हैं कि अन्तर यह है कि इन समस्याओं को उठाने और जिम्मेदारी लेने के लिए हमें प्रोत्साहित किया जाता है। एक मुद्दा यह है कि जनताना सरकार ने अपने संविधान में अनुच्छेद सी-3 के तहत कृषि विभाग को निर्देश दिया है-"जमीन का पट्टा परिवार के नाम पर और पति-पत्नी के नाम पर संयुक्त रूप से जारी करें। इसका विरोध हुआ। लेकिन अब यह आगे बढ़ रहा है। किसी भी परिस्थिति में यदि कोई जनताना सरकार के क्षेत्र में यात्रा करता है तो उसे आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी अवश्य दिखायी देगी। मेरी बातचीत सिर्फ पुरुषों से ही नहीं महिलाओं से भी हुयी। कई रूपों में जागरूक महानगरीय संस्कृति यही है जो हम जनताना सरकार के क्षेत्र में देख रहे हैं जहां लिंग भेद और पितृसत्ता के खिलाफ खुले आम बोला जाता है और उसे चुनौती दी जाती है।

ऐसे बहुत से मुद्दे थे जिनके बारे में मैं जानना चाहता था। जैसे कि समान एण्डोगेमस समूह के अन्दर प्रेम विवाह का सवाल। और जैसा कि पार्टी ने मुझे बताया था कि वह ऐसे जोड़ों का समर्थन करती है जो आदिवासी प्रथाओं के खिलाफ जाकर शादी करते हैं। मैं यह भी जानना चाहता था कि क्या घरेलू कामकाज में पुरुष और महिला दोनों हाथ बंटाते हैं? मैं यह भी जानना चाहता था कि यदि पति और पत्नी दोनों पार्टी सदस्य हैं तो क्या उस वक्त जब पत्नी बैठक में या किसी पार्टी काम में भाग लेने जाती है तो पति घर का कामकाज करता है ? दुर्भाग्य से मुझे इसमें और अबूझमाड़ की यात्रा व वहां चलाए जा रहे विकास कार्यक्रमों को देखने में से एक को चुनना था और मैंने बाद वाला चुना।

### श्वेत आतंक

अस्सी के दशक के अन्त में डीके में महिलाओं और किसानों के संगठन जोन स्तर पर काम कर रहे थे जिसमें कई राज्यों के आदिवासी क्षेत्र शामिल थे और जनमिलीशिया में भर्ती बढ़ रही थी। लेकिन राज्य दमन भी बढ़ रहा था। एक चरण वह आया जब आदिवासियों ने डीएकेएमएस को अपने संगठन के रूप में स्वीकार करते हुए उसपर अपना भरोसा जताया। चूंकि आदिवासियों में सामूहिक भागीदारी की परम्परा है इस लिए गांव के गांव इसमें शामिल होने लगे। उन्होंने कहा-"सामूहिक भागीदारी की आदिवासियों की पुरानी परम्परा का इस्तेमाल पार्टी ने क्रान्ति के हित में किया। अब वे खुद पार्टी व संगठन का लाभ समझने लगे हैं और इसने जनता की चेतना को इस स्तर तक ऊंचा उठा दिया है कि वे खुद जनता और मुखिया के बीच और जनता व राज्य के बीच के अन्तरविरोधों को चिन्हित कर सकते हैं। अतः अब उनके सामने संश्रय भी एकदम स्पष्ट था। मुखियाओं ने राज्य का साथ दिया। जबकि पार्टी व जनता साथ खड़े हुए।" जनता के बीच यह अहसास गहराने लगा कि यदि वे जमीन पर अपना अधिकार बरकरार रखना चाहते हैं तो उन्हें संगठित होना होगा और लड़ना होगा। नहीं तो राज्य और मुखिया इसे वापस छीनने का कोई मौका नहीं देंगे। अतः पार्टी ने उनका मार्गदर्शन किया कि यदि वे संगठित होते हैं और अपने आप को सशस्त्र करते हैं तभी वे अपने अधिकारों की रक्षा कर पाएंगे। परिणामस्वरूप पार्टी में भर्ती बहुत तेज गति से बढ़ने लगी।

इसी वक्त 1990-91 में तत्कालीन मध्यप्रदेश सरकार ने पहला जनजागरण अभियान शुरू किया। चूंकि आदिवासी मुखिया अपनी परम्परागत हैसियत और जमीन खो चुके थे इस लिए डीएकेएमएस अब उनका स्थान लेने लगी। अतः स्वाभाविकतः 1990-91 में जनजागरण के रूप में चलाए जाने वाले प्रथम श्वेत आतंक के रूप में राज्य और मुखिया साथ नज़र आए। 1991 में महाराष्ट्र के गढ़चिरौली और तत्कालीन मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र में

दमन शुरू हुआ। 1991-94 के बीच दर्जनों पार्टी सदस्य मार डाले गए। गढ़चिरौली के एक गांव से आने वाले सुखलाल ने मुझे बताया कि उसके गांव पर 15 बार आक्रमण हुआ। उस वक्त वह किशोर अवस्था में था। सोनू ने कहा कि उस वक्त पार्टी ने राज्य के खिलाफ लड़ने का निर्णय लिया। 1991 से राज्य के सुरक्षाबलों के खिलाफ कार्यवाइयां शुरू हुईं और गुरिल्ला जोन बनाने की प्रक्रिया विकसित होने लगी। तब से सभी ग्रामीण समस्याओं को डीएकेएमएस को भेजा जाने लगा। परम्परागत मुखिया वाली व्यवस्था और सरकारी पंचायत व्यवस्था दोनों की जमीन खिसकने लगी। यह साफ तौर पर सत्ता हस्तांतरण था। यहां तक कि पटवारियों ने भी राजस्व इकट्ठा करने के लिए यहां आना बन्द कर दिया। इस समय पार्टी ने पाया कि यहां एक सत्ता शून्यता की स्थिति पैदा हो गयी है। और डीएकेएमएस शून्य को नहीं भर सकता। 1994 में औपचारिक रूप से जनसत्ता निकाय बनाने का निर्णय लिया गया। 1995 में पार्टी की अखिल भारतीय विशेष कांग्रेस हुयी जहां पार्टी ने 'ग्राम राज्य समिति' कहे जाने वाले सत्ता निकाय के निर्माण के निर्णय पर अपनी मुहर लगा दी। यह निकाय 18 साल के ऊपर के सभी ग्रामीणों द्वारा चुना जाता था और इसका मुख्य जोर खेती के विकास पर होता था। जैसे-जैसे मुखियाओं के परम्परागत विशेषाधिकार और सरकारी पंचायत व्यवस्था ध्वस्त होने लगी तथा जनसत्ता भ्रूण रूप में विकसित होने लगी तो इन दोनों सत्ताओं के बीच संघर्ष अपरिहार्य हो गया। जैसे ही जनसत्ता सुदृढ़ हुयी राज्य ने पुनः प्रतिक्रिया की और 1997 में जनजागरण के नाम से दूसरा आतंक अभियान शुरू हुआ। इस अभियान में बहुतसे स्थानीय कामरेडों को यातनाएं दी गयीं, बहुत से घरों को जला दिया गया और जनता को समर्पण करने के लिए धमकियां दी गयीं। उदाहरण के लिए एक कामरेड को एक सार्वजनिक बैठक में ही सबके सामने जान से मार दिया गया और आतंक का माहौल बनाया गया। लेकिन क्या पार्टी ने इस समय अपनी सैन्य ताकत को स्कवैड के स्तर तक विकसित नहीं किया? और कार्यवाइयां नहीं संचालित की? हां उन्होंने किया। वेदायर गांव का एक मासा बहुत ही क्रूर और कुख्यात ग्रामीण मुखिया था। जनता के दुश्मन के रूप में उसका सफाया कर दिया गया। इस तरह कुछ चुने हुए लोगों की हत्याएं की गयीं। यह चरण 6 से 8 महीने तक चला। हालांकि सलवा जुद्ध के नाम से जो आक्रमण 5 जून 2005 से शुरू हुआ वह गुण और मात्रा दोनों में पिछले दोनों जन जागरण अभियानों से अलग था। जहां दोनों जनजागरण अभियान मुख्यतः स्थानीय स्तर पर संगठित किये गए थे वहीं सलवा जुद्ध स्थानीय राज्य व केन्द्र की समन्वित योजना का परिणाम था। राज्य पुलिस व केन्द्रीय अर्धसैनिक बलों ने स्थानीय स्तर पर सलवा जुद्ध गुण्डों के साथ मिलकर एक दूरगामी परिप्रेक्ष्य के साथ जनता पर आक्रमण किया।

2004 में सीपीआई माओवादी बनने के बाद जनान्दोलन की मजबूती और विकास के कारण पार्टी राज्य का प्राथमिक निशाना बन गयी। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि एकीकृत पार्टी के इस उभार ने पार्टी को इस योग्य बना दिया कि वह जंगल की जमीन के कारपोरेट घरानों द्वारा हथियाए जाने के खिलाफ एक मजबूत प्रतिरोध खड़ा कर सके। 1998 तक आते-आते नक्सलवादियों के प्रति भारतीय सरकार के रुख में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। उस वक्त भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन के तत्कालीन गृहमंत्री एल के आडवानी के नेतृत्व में नक्सलवादियों एवं माओवादियों को 'आन्तरिक सुरक्षा' के प्रति एक बड़े खतरे के रूप में चिन्हित किया जाने लगा। 2004 में जब कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सत्ता में आयी और मनमोहन सिंह ने प्रधानमंत्री का पद संभाला तो दमन की नीति के प्रति झुकाव और बढ़ गया। मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार ने माओवादी पार्टी को देश की 'आन्तरिक सुरक्षा' के लिए सबसे बड़ा खतरा चिन्हित किया। यह इस तथ्य के बावजूद था कि 2004-05 को माओवादियों को आन्ध्रप्रदेश में एक गम्भीर

धक्के का सामना करना पड़ा था और पार्टी के आंकड़ों के अनुसार वहां उसने 1800 कार्यकर्ताओं को खो दिया था। आन्ध्रप्रदेश में माओवाद विरोधी ऑपरेशन अक्टूबर 2004 में शुरू किया गया। जो पूरे 2005 तक चलता रहा। संयोग से सलवा जुझम औपचारिक रूप से जून 2005 में शुरू हुआ। लेकिन इसकी तैयारी महीनो पहले से चल रही थी। (देखिए, [व्हेन द स्टेट मेक्स वार ऑन इट्स ओन पीपुल: वायलेशन ऑफ पीपुल्स राइट इयूरिंग द सलवा जुझम](#) का 'बैकग्राउण्ड' अध्याय - एपीडीआर, आईएपीएल, पीयूसीएल, पीयूडीआर द्वारा जनवरी 2006 में प्रकाशित) अतः सलवा जुझम पहले से ही बनायी गयी एक समन्वित योजना थी। ताकि जनसत्ता के सुदृढीकरण की प्रक्रिया पर हमला किया जाए, जो कि छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखण्ड सरकार द्वारा खनन और खनन आधारित उद्योगों के लिए हस्ताक्षरित सैकड़ों एमओयू के क्रियान्वयन के मार्ग में सबसे बड़ी चुनौती थी। 5 जून से शुरू हो कर दिसम्बर 2005 तक आतंक का यह अभियान अपने चरम पर था। विशेषतौर से दो ब्लॉक भैरमगढ़ और बीजापुर का चयन भयानक आक्रमण के लिए किया गया। और इस पूरी प्रक्रिया में लगभग 644 गांव नष्ट कर दिये गए और जनता को विस्थापित कर दिया गया। सरकारी आकड़ों के अनुसार 3 लाख 50 हजार जनता विस्थापित हुयी। इनमें से सिर्फ 56000 लोगों की ही गणना की गयी और उन्हें 33 यातना शिविरों में या जिसे वे राहत शिविर कहते हैं, में रखा गया। दूसरे 35000 आदिवासियों ने आन्ध्रप्रदेश में शरण ली। हालांकि सरकार अभी भी शेष लोगों की गणना से बच रही है। सोनू ने कहा कि "बहुसंख्यक लोग हमारे साथ हैं।" कैम्पों रहने को मजबूर जनता बहुत बुरी स्थिति में रह रही है। अपने गांव में लौटने का साहस करने वाले लोग अभी भी मुख्यतः पास के जंगलों में रह रहे हैं। क्योंकि अन्धाधुंध लूटपाट हत्याएं और बलात्कार के रूप में दमन अभी भी जारी है।

### इस परिस्थिति में पार्टी ने क्या किया?

जनवरी 2006 में सलवा जुझम के खिलाफ एक ठोस और योजनाबद्ध अभियान लिया गया। पार्टी ने जब सलवा जुझम के खिलाफ अभियान शुरू किया तो राज्य के झूठे प्रचार का पूरी तरह से पर्दाफाश किया गया जिसमें राज्य यह प्रचारित कर रहा था कि सलवा जुझम जनता का एक स्वतन्त्र और स्वतःस्फूर्त आन्दोलन है और यह एक तरह की लोकतांत्रिक क्रान्ति है। साफतौर पर यह आदिवासियों द्वारा अपना अस्तित्व बचाए रखने की लड़ाई थी। पार्टी ने जनता से आह्वान किया कि वे अपनी रक्षा के लिए मिलीशिया में शामिल हो जाएं। इसी रूप में 2006 में कोया भूमकाल मिलीशिया का गठन हुआ। 10 फरवरी 2006 को इसकी विधिवत घोषणा की गयी। स्पष्ट तौर पर इसे 1910 के भूमकाल विद्रोह की भावना से जोड़ा गया था। पार्टी के अनुसार सलवा जुझम के खिलाफ और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए लड़ाई लड़ने को हजारों-हजार जनता मिलीशिया में भर्ती हो गयी। जनता, पीएलजीए, पार्टी, जन संगठन और राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर चले अभियानों ने मिल कर एक बड़े आन्दोलन की शक्ल ले ली। इसके लिए पार्टी देश की जनवादी ताकतों के प्रति कृतज्ञ है। पार्टी के आकलन के अनुसार सलवा जुझम मई-जून 2006 में रुक गया था।

सोनू के अनुसार सलवा जुझम राज्य का उत्पाद था जो इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों को लूटना चाहता था। 2004 में भाजपा सत्ता में आयी और 2005 तक सैकड़ों एमओयू पर हस्ताक्षर हो चुके थे। उदाहरण के लिए टेक्सास पावर जनरेशन कम्पनी ने 5 हजार करोड़ रुपया छत्तीसगढ़ में निवेश किया। लोहानदिगुदा में टाटा ने और बानसी में जिन्दल ने बड़े पैमाने पर जमीनें हासिल की। अन्ततः आदिवासी समुदाय के सामने यह अस्तित्व का सवाल था। और उनके सामने बैलाडीला खनन का उदाहरण था। यह 1970 में शुरू हुआ और इसने

एक तरफ लगातार जापान को फायदा पहुंचाया और वहीं दूसरी तरफ आदिवासी जीवन और संस्कृति के मार्ग में लगातार अवरोध पैदा किया। प्राकृतिक संसाधनों को हथियाने की यह नीति आदिवासी समुदाय के सामने आज सबसे बड़ा खतरा है। "मनमोहन सिंह माओवादियों को सबसे बड़ा खतरा बताते हैं लेकिन वास्तविक खतरे का सामना आदिवासी कर रहे हैं। यही कारण है कि बड़ी संख्या में जनता सामने आयी और सलवा जुद्ध का विरोध किया। वस्तुतः, नागालैण्ड और मिजोरम जैसे सुदूर के राज्यों की जनता ने भी नागा और मिजो बटालिन के रूप में अपने बच्चों, सम्बन्धियों की इस क्षेत्र में नियुक्ति का विरोध किया।"

अक्टूबर 2009 तक सलवा जुद्ध के रचनाकारों को अन्ततः सलवा जुद्ध के खात्मे की सार्वजनिक घोषणा करनी पड़ी। हालांकि पार्टी के अनुसार सलवा जुद्ध युद्ध का केवल पहला चरण था और इस चरण का आतंकी अभियान असफल हो गया। राज्य ने अब ऑपरेशन ग्रीन हण्ट के रूप में जनता पर आक्रमण को तीव्र करने के लिए दूसरा चरण शुरू कर दिया और उसके लिए राज्य अपने दमनकारी संसाधनों को लामबन्द कर रहा है। सलवा जुद्ध के दौर में 18 से 20 हजार सुरक्षा बलों को लगाया गया था। आज 2 लाख से ज्यादा सुरक्षा बलों को माओवादियों के खिलाफ लगाया गया है। सलवा जुद्ध के समय के एसपीओ आज कोया कमाण्डो के रूप में जाने जाते हैं। अतः ऑपरेशन ग्रीन हण्ट और कुछ नहीं सलवा जुद्ध का ही विस्तार है। इसके अलावा इस तरह के अभियान डीके के लिए नए नहीं हैं। और झारखण्ड, बिहार, उड़ीसा में भी सेन्द्रा, शान्तिसेना जैसे अभियान मौजूद हैं।

सोनू ने कहा कि लालगढ़ से सरजागढ़ तक प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न समूचा आदिवासी बेल्ट भले ही लाल गलियारे के रूप में प्रचारित किया जाता हो लेकिन वास्तव में यह खनिज गलियारा है। राज्य इस क्षेत्र में पैदा हो रहे जन सत्ता से डर रहा है। इसलिए एक के बाद एक आक्रमणकारी अभियान चला रहा है। सलवा जुद्ध की असफलता के बाद अब हम ऑपरेशन ग्रीन हण्ट का सामना कर रहे हैं। निष्कर्ष रूप में कहें तो श्वेत आतंक 1990-91 में शुरू हुआ था। उसके बाद हमने जन सरकार गठित करने का निर्णय लिया। उसके बाद 1997 में दूसरा श्वेत आतंक शुरू हुआ। इसके बाद हमने आरपीसी को सुदृढ़ कर जन सत्ता को ठोस रूप दिया। उसके बाद सलवा जुद्ध आया और तबसे हम क्षेत्रीय स्तर पर राज्य सत्ता का निकाय विकसित कर चुके हैं। इन वर्षों में सैन्य रूप में हम प्लाटून से कम्पनी की ओर बढ़ चुके हैं और अब बटालियन के गठन की ओर बढ़ रहे हैं।

### **आरपीसी की ओर**

2001 में पार्टी की नवीं कांग्रेस में आधार क्षेत्र और जनसेना बनाने के बारे में अवधारणा विकसित हुयी। एक सम्पूर्ण आकलन के बाद गुरिल्ला बेस बनाने के बारे में निर्णय लिया गया। सोनू के शब्दों में-"2001 में प्रथम आधार इलाके के निर्माण का आकलन कहीं अधिक ठोस तरीके से हुआ। इस पर विस्तार और गहराई से चर्चा की गयी। इसके अनुसार गुरिल्ला जोनों के अन्दर गुरिल्ला आधारों का निर्माण शुरू हुआ। अतः, जन आधारों के समर्थन के स्तर और भौगोलिक स्थिति के हिसाब से जनसत्ता के निर्माण को अब ठोस रूप दिया जा रहा है। गांव में 500 से 3000 लोग अब क्रान्तिकारी जनकमेटियों में संगठित किये जा रहे हैं। समझ यह है कि बिना सेना के जनता सत्ता का निर्माण नहीं कर सकती। जनसेना और जनसत्ता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस विकसित समझ ने सेना और जनसत्ता के विकास के लिए काम करने में हमारी मदद की। प्रत्येक डिवीजन में दो या तीन जगहें गुरिल्ला बेस के लिए चिह्नित की गयी हैं। और इस रूप में 10-12 जगहों पर गुरिल्ला बेस

बनानेके लिए ध्यान केन्द्रित किया गया। माइ क्षेत्र केन्द्रीय गरिल्ला बेस है। गुरिल्लाजोन और गुरिल्ला बेस के बीच का फर्क महज शाब्दिक नहीं है। माओवादियों का यह कहना अर्थपूर्ण है। गुरिल्ला जोन एक अर्थ में वह तरल क्षेत्र है, जहां नियन्त्रण के लिए संघर्ष है और राज्य पूरी तरह अनुपस्थित नहीं है। चाहे उसकी उपस्थिति पुलिस या सशस्त्र बलों के रूप में हो। हालांकि इन गुरिल्ला जोनों में कुछ क्षेत्रों को चुना गया है जहां कुछ काम अपेक्षाकृत बिना बाधा के किये जा सकते हैं। ये क्षेत्र 'आधार' हैं, जहां दुश्मन आसानी से नहीं घुस सकता। यहां आरपीसी काम करती है और यहां मुक्त क्षेत्र को उसके भ्रूण रूप में देखा जा सकता है।

पहला कदम था गांव के स्तर पर आरपीसी बनाना, जिसमें 15 गांव तक होते थे। दूसरा कदम 3 से 5 आरपीसी को लेकर प्रत्येक डिवीजन में चयनित गुरिल्ला आधारों में एआरपीसी बनाना। अतः दिसम्बर 2004 तक प्रथम एआरपीसी बन चुकी थी। और फरवरी 2005 तक दूसरी एआरपीसी गठित हो चुकी थी। 2005 के बाद 2008 तक सभी क्षेत्र एआरपीसी के तहत आ चुके थे। पार्टी का निर्णय था कि प्रत्येक डिवीजन में कम से कम तीन एआरपीसी बनाना है। यह प्रक्रिया इस समय चल रही है। मार्च 2007 प्रथम डिवीजनल सरकार का गठन हुआ। गुरिल्ला आधारों के शुरुआती चरण में सम्बन्धित सैन्य रूप प्लाटून था। अब डिवीजनल सरकार के विकास के साथ सैन्य स्तर पर कम्पनी गठित हो चुकी है। इस प्रक्रिया को तेज करने के लिए उन्होंने जोनल स्तर की सरकार तैयारी कमेटी बनायी है। एक बार इसके बन जाने पर जोन स्तर की सरकार अस्तित्व में आ जाएगी। और इससे सम्बन्धित सैन्य रूप का विकास बटालियन के रूप में हुआ। पहली बटालियन का निर्माण 10 अगस्त 2009 को हुआ।

गांव स्तर की जनताना सरकार के लिए वयस्क मताधिकार की व्यवस्था है। इसके बाद उच्च स्तरों पर चयन की व्यवस्था है। इसका मतलब है कि चुनी हुयी आरपीसी अपने बीच से एआरपीसी के सदस्यों का चुनाव करते हैं। और यही प्रक्रिया जोनल स्तर की काउंसिल तक जाती है। डीके एरिया चूंकि मुख्यतः आदिवासी क्षेत्र है, जिन्हें नए शासन का बहुत सीमित अनुभव है, इस लिए उनके लिए फरवरी 2008 में एक कार्यशाला आयोजित की गयी। सोनू के अनुसार यह एक बहुत ही फलदायी प्रयास था। यहां पार्टी और जनता ने अपने अनुभव और विचार खुले रूप में एक दूसरे से बांटे। दूसरी तरफ चूंकि जन सरकार का उच्चतर स्तर गठित हो रहा था अतः संसदीय चुनाव केबहिष्कार का कार्यभार सक्रियतापूर्वक लिया जा रहा था। अप्रैल 2009 में 15वीं लोकसभा का चुनाव, नवम्बर 2008 में छत्तीसगढ़ विधानसभा का चुनाव और अक्टूबर 2009 में महाराष्ट्र में विधानसभा चुनाव के वक्त जनताना सरकार की पहलकदमी में जनता ने सामूहिक व सक्रिय रूप से चुनाव का बहिष्कार किया। सभी आरपीसी ने गांव में जन सभा करके जनता से कहा कि वे अपनी खुद की सरकार चुन रहे हैं। तो फिर वे उसी समय बाहर की दूसरी सरकार का चुनाव कैसे कर सकते हैं।

जन सरकार की रक्षा के उद्देश्य से जन मिलीशिया भी साथ-साथ ही विकसित की गयी। सैन्य क्षमता भी विकसित हुई और परिणाम स्वरूप प्रत्येक चुनाव में जनता को दबाने व धमकाने का प्रयास करने वाले अर्धसैनिक बलों का पीएलजीए ने और हाल ही में मिलीशिया ने अच्छा प्रतिरोध किया। समूचे समूचे संघर्षरत क्षेत्र में या गुरिल्ला जोन में महज दो से पांच प्रतिशत मतदान हुआ। उदाहरण स्वरूप गोगोन्दा में 700 मतदाता हैं। और यहां चुनाव के वक्त 1000 अर्धसैनिक बल तैनात किये गए थे। भारी तामझाम के बावजूद यहां सिर्फ 10 वोट पड़े। वह भी तीसरी बार के पुनर्मतदान में।

जहां तक भर्ती का सवाल है, पीएलजीए 2001 से अपना भर्ती अभियान चला रहा है। अन्तर सिर्फ इतना है कि 2005 के बाद भर्ती की जिम्मेदारी आरपीसी को सौंप दी गयी। जन सेना की जिम्मेदारी अब जन सरकार यानी जनताना सरकार पर है। आरपीसी जनता को जनसेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित करती है। हमें बताया गया कि दिसम्बर 2008 में गंगालूर में उस क्षेत्र की एआरपीसी ने दो जगहों पर दो जन सभाएं की। इसमें 10000 से ज्यादा लोगों ने भाग लिया। मंच से एआरपीसी के अध्यक्ष ने पीएलजीए में भर्ती होने का खुद आह्वान किया। इन दोनों जन सभाओं से 107 नौजवान स्वैच्छिक रूप से पीएलजीए में भर्ती के लिए आगे आए। और पार्टी ने उनकी स्क्रीनिंग के बाद उनमें से 65 लोगों को भर्ती कर लिया।

डीके के इस क्षेत्र में सभी विकास कार्यों की जिम्मेदारी जन सरकार यानी जनताना सरकार की है। स्थापित प्रशासन का स्थान जनसरकार की मजबूती लेती जा रही है। आरपीसी के पास मूल रूप से सात विभाग थे। बाद में दो विभाग व्यापार व उद्योग तथा जनसम्पर्क को और शामिल कर लिया गया। जनसरकार में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सरकार में उनकी 50 प्रतिशत हिस्सेदारी का लक्ष्य रखा गया है। जब उनसे यह पूछा गया कि क्या यह लक्ष्य पूरा हो रहा है तो उन्होंने बताया कि वे इस पर काम कर रहे हैं और अभी इस क्षेत्र में बहुत सफलता की गुंजाइश नहीं है। जनताना सरकार के जिम्मेदार पदों पर महिलाओं की हिस्सेदारी का प्रतिशत कितना है? मुझे बताया गया कि यह करीब 40 प्रतिशत है। एक समस्या जिसका यहां सामना किया जा रहा है, वह यह है कि पार्टी या पीएलजीए में पूर्णकालिक काम है। और इसमें काफी चलना पड़ता है। इसके विपरीत जनताना सरकार एक तरह से बैठे रहने वाला काम है। और इसमें परिवार तथा घर के कामकाज शामिल रहते हैं। जबतक इन कामों में महिलाओं का हाथ नहीं बटाया जाता, उनके लिए प्रशासनिक जिम्मेदारियों को निभा पाना कठिन होता है। जनताना सरकार के लिए काम का बोझ भी बढ़ा है। उदाहरण के लिए वे मोबाइल स्कूल और मोबाइल स्वास्थ्य सेवा भी चला रहे हैं।

यह जानना रोचक था कि जनताना सरकार अस्पतालों और प्रशिक्षित डाक्टरों की कमी की समस्या से कैसे निपट रही है। वे इसके लिए क्या कर रहे हैं? मुझे बताया गया कि डीके गुरिल्ला जोन में काम करने वाले डाक्टर कार्यशाला चलाते हैं जहां आरपीसी सदस्यों को प्राथमिक प्रशिक्षण दिया जाता है। चूंकि मलेरिया, कालरा, फाइलेरिया यहां के लोगों को होने वाली सबसे ज्यादा खतरनाक बीमारी है। इस लिए इनके लक्षणों को जांचना पढ़ाया जाता है और दवाओं के रंग द्वारा सम्बन्धित दवा की पहचान करायी जाती है। इसी प्रक्रिया में बीमार व्यक्ति का इलाज करके भी दिखाया जाता है। यदि ये 'नंगे पैरों वाले डाक्टर' दवाओं को आपस में घुला मिला देते हैं तो क्या होगा? यहां इस बात की सौ प्रतिशत गारण्टी तो नहीं दी जा सकती कि ऐसा नहीं होगा लेकिन इस तरह की घटना को कम करने के लिए कार्यशालाएं लगायी जाती हैं या कुछ प्रशिक्षित लोगों को उनके साथ भेजा जाता है।

जहां तक मोबाइल स्कूल का सवाल है, तो यह कैम्पों के रूप में चलाए जाते हैं। यहां बच्चे 15 से लेकर 30 दिनों तक स्कूल में शामिल होते हैं। 15 से 30 दिन का समय इस बात पर निर्भर करता है कि उस क्षेत्र विशेष में परिस्थितियां कितनी तनावपूर्ण हैं। यहां 25 से 30 छात्र और 3 अध्यापक होते हैं। इन लोगों ने इतिहास और विज्ञान पढ़ाने के लिए ग्लोब, टार्च लाइट व सीडी आदि का भी इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। विज्ञान पढ़ाने

हुए उन्हें कुछ समस्या आती है क्योंकि विकास क्रम, ब्रह्माण्ड, सूरज, चन्द्रमा आदि के बारे में उनके विश्वास विज्ञान की शिक्षाओं से अलग होते हैं। बच्चों को, जीवन का विकासक्रम व ग्रहण लगने की प्रक्रिया आदि के बारे में शैक्षिक उपकरणों या सीडी के माध्यम से पढ़ाया जाता है। जनताना सरकार शिक्षा के रास्ते में आ रही चुनौतियों का महत्वपूर्ण तरीके से सामना कर रही है। छात्रों के इर्द-गिर्द रोजमर्रा की चीजों को लेकर आधुनिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती है और उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने की कोशिश की जाती है। इससे मुझे मध्यप्रदेश में किशोर भारती के कामों की याद आती है।

### यह कैसे काम करता है?

राजनीतिक संरचना बनाना एक बात है लेकिन यह कैसे काम करेगा इसे सुनिश्चित करना एकदम अलग बात है। मुझे बताया गया कि आरपीसी का चुनाव हर तीन साल पर होता है। और ये आरपीसी अपने बीच से एआरपीसी के लिए सदस्यों का चयन करती हैं। मुझे मालूम है कि औसतन 15 आरपीसी मिलकर एआरपीसी का गठन करती है। आरपीसी जनरल बॉडी की मीटिंग करती है जहां आय-व्यय का लेखा जोखा रखा जाता है और उसकी समीक्षा की जाती है। एआरपीसी के एकाउण्ट को इसके तहत आने वाली सभी आरपीसी की विस्तारित बैठक में रखा जाता है और चर्चा की जाती है। आरपीसी और एआरपीसी दोनों के ही सदस्यों को यह अधिकार है कि वे किसी भी पदाधिकारी को वापस बुला ले यदि वह पदाधिकारी उनकी आशा के अनुरूप काम नहीं कर रहा/रही हो। लेकिन मैं यह जानना चाहता था कि एआरपीसी का बजट कैसा होता है। हम जहां थे, वहां 14 आरपीसी थी। प्रत्येक आरपीसी में प्रायः 160 घर थे। अतः एआरपीसी के तहत 3000 से ऊपर घर होंगे। एआरपीसी में 15 सदस्य थे। नीति नामक महिला कामरेड जो कि डिवीजन कमेटी सदस्य थी, जनताना सरकार में पदाधिकारी थी। शिवनाथ एआरपीसी के अध्यक्ष थे और बालमती उपाध्यक्ष। वित्त विभाग के मुखिया नरेश थे। जबकि सुशीला जनसम्पर्क विभाग की मुखिया थी और पार्टी की एरिया कमेटी सदस्य थी। प्रत्येक एआरपीसी में एक स्टैंडिंग कमेटी होती है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष वित्त विभाग के मुखिया और रक्षा विभाग के मुखिया इसके सदस्य होते हैं। मैंने 2009 का बजट देखने की मांग की। यह इस प्रकार है:

इसकी आय 10 लाख 1 हजार थी। जिसमें 3 लाख 60 हजार ठेकेदारों से वसूले गए टैक्स के रूप में थी, पांच लाख जनताना सरकार द्वारा दिया गया था और 2 लाख 50 हजार उस क्षेत्र के घरों द्वारा श्रमदान के रूप में इकट्ठा किया गया था। जहां तक खर्च का सम्बन्ध है तो यह था-रक्षापर 506935 रुपए, 140250 रु खेती पर, 100000 रु स्वास्थ्य पर, 10000 रु शिक्षा पर, 60 हजार व्यापार पर और 5000 जनसम्पर्क पर। मैंने पूछा कि रक्षा पर खर्च इतना ज्यादा और शिक्षा पर इतना कम क्यों है। नीति ने स्पष्ट किया कि 2004 से जब पीएलजीए और जन मिलीशिया की जिम्मेदारी जनताना सरकार को सौंपने का निर्णय लिया गया तब किट (3 जोड़ी वर्दी, तेल, साबुन, टूथपेस्ट, कपड़े धोने का साबुन, कंधी बारूद धनुष-बाण तथा भोजन) के खर्चे एआरपीसी उठाने लगी। जहां तक शिक्षा पर कम खर्च का सवाल है तो शिवनाथ ने मुझे बताया कि यह इस कारण है कि हम जनताना सरकार द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों के लिए 'गुरुजी' को खोजने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। चूंकि पार्टी कैडर ही इस भूमिका को निभा रहे हैं इस लिए हमें उन्हें वेतन नहीं देना पड़ता। या ज्यादा से ज्यादा सांध्यकालीन स्कूलों को चलाने के लिए जितने खर्च की जरूरत होती है बस उतना ही देना पड़ता है। मैंने उनसे पूछा कि कृषि पर किये जाने वाले खर्च के विवरण को क्या वो मुझे दिखा सकते हैं। यहां मछली पालन, पौधों, बीजों, पपीता, नीबू, आम और अमरूद पर खर्च शामिल है। कुछ वस्तुएं व्यक्तिगत किसानों से खरीदी जाती हैं और



जरूरतमंद लोगों के बीच बांटी जाती हैं। मछली पालन, बीज, और पौधों का मतलब 'पिसीकल्चर' के विकास से है। इस एआरपीसी के पास मछली पालन के लिए चार तालाब हैं और सात कुएं हैं। यहां उन गरीब किसानों को बीज उपलब्ध कराया जाता है। जो इसे खरीद नहीं सकते हैं। या उन्हें दिया जाता है जिन्हें किसी भी कारण से इसकी जरूरत है। इसी तरह से व्यापार के तहत जंगल के उत्पादों को पुनः बिक्री के लिए खरीदा जाता है। एआरपीसी के पास अपना न्याय विभाग भी है।

यहां आम तौर पर किस तरह के मामले आते हैं। ज्यादातर मामले परिवार के सदस्यों विशेषकर भाइयों के बीच के जमीन विवाद के आते हैं। पुरानी परम्परा यह थी कि बड़ा भाई छोटे भाई से ज्यादा जमीन पाता था। और महिलाएं पुरुषों से काफी कम पाती थीं। आरपीसी ने समानता के सिद्धान्त को अपनाया। वे अन्धविश्वास के मामलों में भी हस्तक्षेप करते हैं।

इसमें सबसे कठिन मामला ल द्वारा 3 व्यापारियों की हत्या का था जो बकरी खरीदने के लिए टी गए हुए थे। उन तीनों के पास कुल मिला कर 20000 रु था। सर्वप्रथम उनके गायब होने का मामला स्थानीय पुलिस थाने में दर्ज हुआ। जब वे कुछ नहीं कर पाए तो परिवार वालों ने गायब व्यापारियों का मामला आरपीसी में दर्ज किया। उनकी लाश तीन महीने बाद प्राप्त हो गयी। न्याय विभाग ने जांच के बाद पाया कि लूट पाट के बाद उनकी हत्या कर दी गयी थी। और यह कहानी फैल गयी थी कि जंगली जानवरों ने शायद उन्हें खा लिया। हत्या के दोषी व्यक्ति को जन अदालत में पेश किया गया। जहां पीड़ित परिवार के 115 लोगों सहित कुल 1500 लोग उपस्थित थे। पीड़ित के परिवार वाले दोषी को मृत्यु दण्ड देना चाहते थे। बहुत वाद-विवाद के बाद 60 बैल, 40 बकरी, 15 सुअर, 20 मुर्गे और 10 खाण्डी चावल (1 खाण्डी तीस किलो के बराबर होता है) पर मामला हल हुआ। हालांकि अन्ततः कुल 80000 रु पर मामला हल हुआ। मृतकों की हड्डियां परिवार वालों को सौंप दी गयीं। और अन्तिम क्रिया सम्पन्न हुई। मैंने उनसे पूछा कि दोषी के प्रति यह उदारता क्यों दिखायी गयी। मुझे बताया गया कि जंगली क्षेत्र में 80 हजार रुपए बहुत बड़ी राशि है। और यह धन उस किसान के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती है। अतः धनी किसान को 20 हजार, मध्यम किसान को 15 हजार और गरीब किसान को 10 हजार अदा करना होता है। इसके अलावा उन्होंने कहा कि जनताना सरकार अपने संविधान में सिद्धान्त के तौर पर मृत्यु के बदले मृत्यु को नहीं अपनाती।

अनुच्छेद 5 एच कहता है-"जन अदालत वर्ग दिशा और जनदिशा पर आधारित सही न्यायिक प्रक्रिया के सिद्धान्त पर काम करेगी। न्याय विभाग जनता के बीच की समस्याओं को हल करते हुए उनके बीच एकता बढ़ाएगी। सामान्य तौर पर यह मामलों को हल करने के लिए दण्डित नहीं करती। जब यह जमीन्दारों ऊपरी श्रेणी के लोगों, शासकवर्ग की पार्टियों के मुखियाओं, दुष्ट सरकारी अफसरों, पुलिस, अर्धसैनिक-सैनिक बल, पुलिस मुखबिर, षड्यन्त्रकारियों, तोड़-फोड़ करने वाले, धोखा देने वाले, गुण्डों, चोरों, अराजकतावादियों और इसी तरह के दूसरे लोगों पर जब मुकदमा चलाती है तो वह इन्हें जनता से अलग-थलग कर देती है और उन्हें उपयुक्त सजा देती है। जैसे कि उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लेना। यह अपराधों से बचने में जनता की भूमिका को बढ़ाने के तरीके पर चलती है। यह प्रतिक्रान्तिकारी अपराध करने वालों को मृत्युदण्ड की सजा देती है। मृत्यु दण्ड देने से पहले स्थानीय जन सरकार को उच्चतर अदालत से इसकी अनुमति लेनी पड़ती है। प्रतिक्रान्तिकारी अपराध के अलावा अन्य अपराधों के लिए जैसे हत्या, हत्या का प्रयास, महिलाओं पर अत्याचार, शोषक पुलिस के लिए

मुखबिरी और इस तरह के दूसरे अपराध के लिए लोगों को श्रम कैम्पों में भेजती है। इन कैम्पों में उनसे श्रम कराया जाता है। उन्हें क्रान्तिकारी राजनीति की शिक्षा दी जाती है और उनका सुधार किया जाता है। इससे विवादों, अपराधों और षडयन्त्रों पर निर्णय देते हुए जन न्याय व्यवस्था के विकास में मदद मिलती है।" यह निर्णय सुनाते हुए उनकी परम्पराओं व प्रथाओं का ध्यान रखती है।

अनुच्छेद 5-1 कहता है-"प्रत्येक मामले में जजों के बीच मतदान अनिवार्य है। और बहुसंख्यक की राय के अनुसार ही निर्णय दिया जाना चाहिए। अल्पमत बहुमत में अन्तर कम होने पर भी निर्णय दिया जा सकता है लेकिन महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय दो तिहाई बहुमत से ही दिया जाना चाहिए। न्याय विभाग कमेटी का अध्यक्ष या मुकदमे की अध्यक्षता करने वाला जज निर्णय की घोषणा करेगा। उन्हें जरूरी व्याख्या भी देनी होगी।"

इस आलोचना के विपरीत कि माओवादी बहुत सामान्य कारणों पर भी हत्याएं कर देते हैं, मृत्युदण्ड सिर्फ प्रतिक्रान्तिकारी अपराधों के लिए सुरक्षित रखा जाता है। शेष मामलों में इसका इस्तेमाल नहीं किया जाता। प्रतिक्रान्तिकारी अपराध का क्या मतलब है? इस सन्दर्भ में मैं जो भी एकत्र कर पाया उसके अनुसार यह बहुत घृणित अपराध है जैसे सुरक्षा बलों को सहयोग देकर क्षेत्र में एम्बुश कराना जिसके परिणामस्वरूप कई लोग मारे जाते हैं। ऐसे मामलों में मृत्युदण्ड दिया जाता है। यह दण्ड सारे मुखबिरों को नहीं दिया जाता, किसी की हत्या करने वालों को भी नहीं। मुझे बार-बार यह बताया गया कि मृत्युदण्ड बहुत ही अपवाद है और इससे पहले सम्बन्धित व्यक्ति को कई चेतावनी दी जाती है। इसके बावजूद संविधान इस बात की व्यवस्था करता है कि यह दण्ड तब तक न दिया जाए जब तक कि इस पर उच्चतर निकायों जैसे राज्य या जोनल जनताना सरकार की मुहर न लग गयी हो। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि प्राधिकार का दुरुपयोग न होने पाए। जन लामबन्दी के लिए युद्ध एक रूपक के रूप में

हालांकि मैं इस तथ्य से परिचित हूं कि माओवादी जनयुद्ध को अपनी राजनीति का एक मूलभूत भाग मानते हैं। फिर भी, चर्चा के दौरान इस राजनीति पर स्पष्टता और साफ हुयी। वे इसे कैसे समझते हैं? हमारी चर्चा उनके द्वारा किये गये कुछ जबरदस्त ऐक्शनो की ओर मुड़ गयी। मैं उनसे उड़ीसा राज्य में नयागढ़ ऐक्शन के बारे में पूछ रहा था। उसी समय जीएस ने कहा कि सैन्य ऐक्शन ऑपरेशनका सिर्फ एक भाग है। इस ऐक्शन से पहले आठ-नौ महीने सम्बन्धित क्षेत्र में राजनीतिक काम किया गया। इसके बाद इसे 'ऑपरेशन रोपवे' नाम दिया गया। जिसका मतलब था पार्टी रायगढ़ से आगे राज्य की राजधानी भुवनेश्वर के करीब वाले क्षेत्र में छलांग लगा रही है। महीनों पहले पार्टी सदस्य नयागढ़ में प्रवेश कर गए थे और जनता के बीच काम करते हुए, उनमें से कुछ का विश्वास जीतते हुए अपने आप को स्थापित कर रहे थे। सैन्य से ज्यादा जैसे कि, शस्त्रागार को लूटना, यह राजनीतिक लामबन्दी थी जो सफल हुयी। सैनिक रूप से जहां तक मैंने पाया ऐक्शन कम सफल था। हम चार सौ पांच सौ हथियारों की उम्मीद किये थे। जबकि वहां 1200 हथियार थे। उसी तरह हमारा अनुमान था कि 30 या 40 हजार गोलियां होंगी जबकि वहां 1 लाख गोलियां थीं। अतः जिस ताकत को इस रेड के लिए तैयार किया गया वह जरूरत से कहीं कम थी। इसके अलावा ऐक्शन को रात में होना था। और गुरिल्लाओं को ध्यान रखना चाहिए था कि भागते समय उन्हें कोई देख न पाए। इसके विपरीत ऑपरेशन देर रात्रि में शुरू हुआ और भोर में जाकर खत्म हुआ। इस समय तक नयागढ़ के निवासी बाहर इकट्ठा हो चुके थे और हम

किसदिशा में पीछे हट रहे हैं, यह उन्होंने देख लिया था। इसके अलावा वे सिर्फ 300 हथियार और 50000 गोलियां ही ला सके। फिर भी यदि इस ऐक्शन को सफल कहा जाता है तो इस लिए कि हमने राजनीतिक लामबन्दी की और माओवादी नए क्षेत्रों में विस्तार कर सके। यहां महत्वपूर्ण बिन्दु पर मैं जोर देना चाहता हूं, वह है कि प्रत्येक सैन्य कार्यवायी को पार्टी की राजनीतिक विस्तार की उसकी योग्यता के रूप में देखा जाना चाहिए। यह एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू भी है।

जब मैं बस्तर घूम रहा था, उस समय मुझे बताया गया कि जनताना सरकार ने सहकारी खेती का प्रयोग शुरू कर दिया है। यह 'जन अर्थव्यवस्था' की मजबूती की दिशा में पहला कदम है। यह याद रखा जाना चाहिए कि जनयुद्ध सैन्य कार्यवाइयां या ऑपरेशन नहीं हैं। यह मुख्यतः या लगभग 80 प्रतिशत गैर सैन्य काम है। माओवादी समझते हैं कि संगठित मिलीशिया द्वारा उत्पादन या वन उत्पाद का संग्रह उनके कार्यनीतिक प्रति आक्रमणकारी अभियान का हिस्सा है। जिनके माध्यम से सदस्यों के व्यक्तिगत खर्च और युद्ध की जरूरतें पूरी की जाती हैं। अतः उत्पादन कार्यवायी में भागीदारी जनयुद्ध का मूलभूत भाग है। इसे अच्छी तरह समझ लिया जाना चाहिए वरना जनयुद्ध का सन्दर्भ आने से हम इसे राज्य के सैन्यीकरण के बुरे रूप में देखने पर बाध्य हो सकते हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है, जनयुद्ध का मतलब संसाधनों की लामबन्दी और दमन व अकाल से प्रभावित जनता के लिए कल्याणकारी योजनाएं जैसे शिक्षा, चिकित्सा सुविधा व अनाज वितरण चलाना भी है। जनताना सरकार किसानों को लीज और लोन मुहैया कराती है और भीषण दमन के बीच भी भूमिसुधार चलाती है। मुझे याद आयी जुलाई 2007 में प्रकाशित पीपुल्स मार्च के परिशिष्ट की, जिसमें दिखाया गया था कि कैसे छत्तीस गढ़ के दन्तेवाड़ा जिले के सलवा जुझम आतंक से सबसे ज्यादा प्रभावित भैरमगढ़ ब्लॉक में 768 एकड़ आदिवासी व गैरआदिवासी जमीन्दारों की जमीनें जब्त करके जनताना सरकार द्वारा लोगों में बांटी गयी। ये गांव थे-ताकीलोड, सथवा, धर्मा, बेलनार, पूसल, नीरम, पीडियाकोट, पोल्लेवाया, पल्ला, कोडनका, परकेली, मारकापल, उरसापारा और ओथिया। जनता पार्टी के साथ है, इस बात का आत्मविश्वास पार्टी के लोगों में स्पष्ट है। जनताना सरकार द्वारा चलाए गए सुधार कार्यक्रमों से जिनकी ज़िन्दगी बदल गयी है वे निश्चित ही वहीं रहेंगे, संगठित होंगे और प्रतिरोध करेंगे। यह बात इसतथ्य से भी स्थापित होती है कि बस्तर क्षेत्र के गांव में पांच सालों से चलाए जा रहे सलवा जुझम की हानिकारक व विध्वंसक गतिविधियों ने माओवादी आन्दोलन को कमजोर नहीं किया बल्कि उसे मजबूत ही किया। इस सन्दर्भ में 'जनअर्थव्यवस्था' को विकसित करने के उनके लगातार प्रयास के तहत ही उन्होंने डीके में सहकारी खेती की शुरुआत की (जो भूमि वितरण से गुणात्मक रूप से एक कदम आगे का चरण है), वर्कटीम आदि की शुरुआत की।

जो जमीन आरपीसी की थी उसे आरपीसी की पहलकदमी में गांव वालों ने साफ की। गांव वाले इस जमीन पर अपना श्रम साझा करके जोतते-बोते हैं और फिर फसल को अपने बीच बांट लेते हैं। यह सहकारी खेती सामूहिक खेती की दिशा में एक प्रयोग है जहां आरपीसी के जरिए भूमि पर सामूहिक स्वामित्व होता है। गांव में स्थित परिवारों द्वारा इस पर खेती की जाती है और फसलों को आपस में बांट लेते हैं। माइ क्षेत्र में दो साल पहले इसकी शुरुआत हुयी। यहां की हरी मिर्च देखकर मैं हैरान रह गया। यहां सब्जी बोई जाने वाली जमीनों के लगभग 25 प्रतिशत हिस्से पर मिर्च की खेती है। यहां हर व्यक्ति हरी और लाल मिर्च बहुत अधिक खाता है। वे

सोंफ, प्याज, बैंगन, कद्दू, भिण्डी, फूलगोभी, केला, मक्का, टमाटर, पालक, लौकी भी बोते हैं। मैंने कम्मा बाबा से पूछा कि इसमें कितना श्रम लगता है? पूरे खेत को साफ करने में 28 गांव वाले लगते हैं और पूरे दिन का समय लगता है। गांव के सभी परिवारों से लगभग एक व्यक्ति बीज बोने के लिए आता है, हर आठ दिन पर पानी देने के लिए प्रत्येक परिवार से दो लोग आते हैं। और प्रत्येक दिन और रात क्रम से दो लोग जंगली जानवरों से खेती को बचाने के लिए पहरा देते हैं। एआरपीसी के एक दूसरे कृषि विशेषज्ञ नरसिंहा ने मुझे एक खेत दिखाया जहां धान बोया हुआ था। यह डेढ़ एकड़ का खेत था। फसल तैयार थी और कुछ ही दिनों में गांव वाले आकर कटाई करने वाले थे। इस तरीके से गांव वालों में आत्मनिर्भरता बढ़ेगी और बाहर के हाटों पर उनकी निर्भरता कम हो जाएगी। समय की जरूरत यह है कि जनताना सरकार लोगों को भोजन उपलब्ध कराए। इन खेतों के उत्पाद को कैसे बांटा जाता है। वे वर्ग दिशा का पालन करते हैं। गरीब किसानों को सबसे पहले मिलता है और फिर क्रम से दूसरे लोगों को हिस्सा दिया जाता है। क्या गांव वाले सिर्फ अपने लिए ही सब्जियां पैदा करते हैं या बाजारके लिए भी? योजना तो यही थी कि कुछ उत्पादों को हाट में भी बेचा जाए लेकिन हाट के कैम्पों में स्थानान्तरित होने से अब यह सम्भव नहीं रहा। अतः हो सकता है कि सब्जी पैदा करने वाले खेतों में अनाज पैदा होने लगे।

अब मैं माड़ में टोक आरपीसी के 2009 के कृषि विभाग के 2009 के रजिस्टर से कुछ चीजें कुछ चीजें बताना चाहता हूं:

**धान:** 87 खाण्डी (खाण्डी 20 पेल्ली और 1 पेल्ली डेढ़ किलो के बराबर होता है। अतः एक खाण्डी 30 किलो के बराबर होता है) या 2610 किग्रा तीन एकड़ पर पैदा होता है जहां साठ लोग दो दिन काम करते हैं।

**दालें:** 10 पेल्ली या 15 किलो आधे एकड़ पर पैदा होता है, एक दिन में 3 बार जुताई के बाद।

**चावरी (मेड़ पर बोई जाने वाली एक तरह की सब्जी):** 30 किलो बीज के लिए और 100 किलो उपभोग के लिए 70 यार्ड पर पैदा होती है।

**बरबटी:** 26 किलो आधे एकड़ पर, एक दिन में एक जुताई ।

**सरसों:** आधे एकड़ पर डेढ़ कुन्तल होता है। तीन दिन काम होता है। कितने लोग लगते हैं इसका आकड़ा उपलब्ध नहीं।

**गंगा:** (तेल बीज) तीन एकड़ जमीन पर 138 किलो। श्रम 10 व्यक्ति का।

**तिल:** आधे एकड़ से कम जमीन पर 15 किलो। जमीन की जुताई दो लोगों द्वारा।

**कद्दू:** कोसरा अनाज के साथ मिलकर 3 एकड़ पर 100 किलो।

**कुंभड़ा:** पुनः कोसरा अनाज के साथ मिलकर 3 एकड़ पर 300 किलो।

**टमाटर:** 40 किलो।

**खीरा:** 200 किलो।

**बैंगन:** 20 किलो।

**मक्का:** सरसों के साथ उसी जमीन पर 870 किलो उगाया गया। समूचे आरपीसी के घरों के लिए।

**रहद की दाल:** मेड़ पर 10 किलो उगायी गयी।

**पालक:** 15 किलो।

धान और कोसरा गर्मी के महीनों में प्रयोग के लिए तथा गरीबों के लिए स्टोर की जाती है।

2009 में डुमार आरपीसी (माड़) ने 10 गांव के 109 लोगों को 816.5 किलो धान वितरित किया।

उसी आरपीसी में मानसून के दौरान 243 किलो ग्राम धान अतिरिक्त रूप से वितरित किया गया। उन्होंने 2009 में वेदामिता आरपीसी को भी 622.5 किलो धान उपलब्ध कराया था।

जनताना सरकार के तहत इस तरह के कितने फार्म हैं? दुर्भाग्य से मुझे संख्या का पता नहीं चल पाया। लेकिन पिछले दो वर्षों से आरपीसी क्षेत्र में और प्रत्येक गांव में इस तरह के फार्मों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इस लिए उनकी संख्या काफी अधिक होगी। मुझे बताया गया कि माइ में प्रत्येक आरपीसी के तहत कम से कम एक सहकारी फार्म जरूर है। और कुछ जगहों पर तो इससे ज्यादा भी। जो उदाहरण मुझे बताए गए वे सफल उदाहरण थे। लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे भी तो होंगे जो असफल हो गए हों? लेकिन मुझे उत्तर मिला कि कोई भी सहकारी फार्म असफल नहीं हुआ है। लेकिन हमें देखना होगा कि क्या इसकी गतिशीलता भविष्य में भी कायम रह पाती है। कुल मिला कर बात यह है कि खाद्य सुरक्षा के विकास के मामले में ये फार्म बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। यह भी महत्वपूर्ण है कि कुछ पार्टी सदस्य बस्तर में भूतत्वों की कमी पर भी चर्चा कर रहे थे और भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए अमोनिया, यूरिया और जिंक की जरूरत पर जोर दे रहे थे। स्पष्ट है कि लगातार तीव्र होते युद्ध के बीच भी वे इन मुद्दों को जीतने की कोशिश कर रहे हैं। या शायद इससे उन्हें खाद्य की कमी को पूरा करने के लिए विकास की गति को तेज करने में मदद मिले।

### मुझे कुछ उत्तर चाहिए

विस्थापन, जमीन की लूट और पार्टी की इसके खिलाफ भूमिका पर बात करते हुए जो अपरिहार्य सवाल मेरे दिमाग में उठा, वह यह कि निस्संदेह खनिज का खनन किया जाना चाहिए और विकास के लिए खनिज आधारित उद्योगों की जरूरत है। तो फिर कारपोरेट भूमि लूट का विरोध करते हुए क्या पार्टी औद्योगिकीकरण का ही विरोध नहीं कर रही है?

ठीक इसी कारण से राजू ने कहा कि हम जल्द ही अपनी खुद की खनन नीति सामने लाने वाले हैं। इसकी मुख्य विशेषता क्या होगी?

इसके जारी होने तक कृपया इन्तजार कीजिए। किन्तु एक चीज निश्चित है कि लौह अयस्क के गुण पर आधारित 10 से 15 रुपए की प्रति मीट्रिक टन की रायल्टी बहुत ही कम है। जबकि लौह अयस्क की अन्तरराष्ट्रीय कीमत प्रति मीट्रिक टन 10000 रुपए से ऊपर पहुंच चुकी है। उन्होंने छत्तीसगढ़ से निकली एक बुकलेट का जिक्र किया जिसमें सरकार की दोषपूर्ण नीतियों की कुछ विसंगतियों को उजागर किया गया था और यह बताया गया था कि कैसे इसके माध्यम से बड़े और विदेशी कारपोरेट घरानों को फायदा पहुंचाया जा रहा है। इसका वर्णन करते हुए उन्होंने आगे कहा कि एनएमडीसी बैलाडीला खान से लौह अयस्क 400 रुपए प्रति टन के हिसाब से जापान को भेजता है। वहीं स्थानीय उत्पादकों को यह लौह अयस्क 5800 रुपए प्रति टन की दर से खरीदना पड़ता है। छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा से सम्बन्धित इन्जीनियर्स वर्क्स यूनियन ने मालिकों को इस बात से प्रभावित किया कि कम वेतन देकर मजदूरों को निचोड़ने की बजाय उन्हें सरकारपर दबाव डालना चाहिए कि वह उनके खिलाफ भेदभाव पूर्ण नीति न अपनाए जिसके तहत वह एक ओर तो उन्हें बहुत मंहगे दामों पर लौह अयस्क बेचती है, वहीं दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कारपोरेट घरानों को बहुत ही कम दाम पर कैप्टिव खान आवंटित कर देती है। परिणाम स्वरूप स्थानीय उत्पादकों के लिए लौह अयस्क के दाम कुछ कम हुए।

राजू के अनुसार पार्टी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को खनन लीज दिये जाने के एकदम खिलाफ है। और घरेलू उद्योग के उपभोग की बजाए खनिजों के निर्यात के एकदम खिलाफ है। उनका मानना है कि खनन की कार्यवाही पर

सखती से नियंत्रण होना चाहिए। उत्पादन की बढ़ोतरी, ऊर्जा बचत और खुदाई के बाद जमीन के पुनर्स्थापन के लाभ के बारे में उनका क्या ख्याल है... ।

उन्होंने कहा कि इन सभी मुद्दों को सम्बोधित किया जाएगा और हमारी पार्टी स्थानीय उद्योगों के खिलाफ नहीं है।

जब मैंने उनसे यह पूछा कि क्या इसका मतलब यह है कि खानों को निजी पार्टियों को लीज पर दिया जाएगा, और यदि ऐसा है तो वह मापदण्ड क्या होगा और इसकी गारण्टी कौन लेगा कि वहां कोई शोषण नहीं होगा? राजू ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया-"आपको कुछ धैर्य रखना चाहिए और इन्तजार करना चाहिए।"

मैं तो इन्तजार कर लूंगा लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि पार्टी को भी अपनी खनन नीति की सार्वजनिक घोषणा करने की जरूरत का महत्वपूर्ण तरीके से अहसास है। और वे इस मामले में सजग हैं। क्योंकि राजू ने कहा था कि पार्टी औद्योगीकरण के खिलाफ नहीं है। वे बड़े उद्योगों के पुरजोर खिलाफ हैं। उनका यह भी मानना है कि जंगल उत्पाद जैसे आंवला, बांस या लकड़ी आदि पर आधारित उद्योगों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

एक दूसरा सवाल जो मुझे परेशान कर रहा था वह यह कि पार्टी अपनी सभी जरूरतों को कैसे पूरा करती है?

'हमारी वित्तीय नीति' नामक दस्तावेज मुझे पढ़ने को दिया गया। इस दस्तावेज में कहा गया है:-

"मुख्यतः तीन तरह के संसाधनों से हम अपनी आर्थिक जरूरतें पूरी करते हैं। पहला-पार्टी सदस्यता शुल्क, लेवी और जनता का योगदान। दूसरा-शत्रु के आय के स्रोत और उसकी सम्पत्ति पर कब्जा। तीसरा-गुरिल्ला जोन और बेस एरिया में प्रगतिशील टैक्स व्यवस्था द्वारा इकट्ठा किया गया धन। वर्तमान में हमारे लिए स्वतन्त्र उत्पादन द्वारा हो रही आय बहुत कम है। अतः यह कोई आय का महत्वपूर्ण स्रोत नहीं है। आधार क्षेत्र बनने के बाद ही यह सम्भव होगा।

हमारी आय का स्रोत बहुत सीमित है। लेकिन हमारा कार्य क्षेत्र विस्तारित हो रहा है। युद्ध की तीव्रता बढ़ रही है। क्षेत्रों में हमारी गतिशीलता भी बढ़ रही है। अतः हमारी जरूरतें और खर्च भी बढ़ रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है कि विभिन्न क्षेत्रों की आय समान नहीं है क्योंकि आन्दोलन का विकास असमान है। यह भी एक तथ्य है कि बढ़ते हुए खर्च के साथ हमारी आय नहीं बढ़ रही है। अतः यह जरूरी है कि हम आय और व्यय में संतुलन कायम करें। अतः ऊपर कहे गए संतुलन को पाने के लिए, युद्ध की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए, राजनीतिक प्रचार के लिए और जनता के जीवनस्तर में बढ़ोतरी के लिए यह आवश्यक है कि हम आर्थिक संसाधनों को विकसित करें और खर्च को नियंत्रित करें। इसके लिए हमारी पार्टी में एक केन्द्रीयकृत वित्तीय नीति और योजना की सख्त आवश्यकता है। इसका मतलब है कि सभी आय और व्यय की योजना केन्द्रीय स्तर पर ही बननी चाहिए। यह केन्द्रीयकृत नीति और योजना पूरी पार्टी में कमेटी व्यवस्था के अनुसार ऊपरी कमेटी से लेकर निचली कमेटी तक लागू होनी चाहिए।

यद्यपि हम उपरोक्त केन्द्रीयकृत समान नीति की रेशनी में काम करते हैं लेकिन फिर भी सीसी के लिए यह मुश्किल होता है कि वह भारत जैसे बड़े देश में क्रान्तिकारी युद्ध की सभी जरूरतों को पूरा कर पाए। अतः यदि हम दीर्घकालिक जनयुद्ध के नजरिये से देखें तो सम्बन्धित क्षेत्रों को आत्मनिर्भर बनाना भी बड़े महत्व की बात है। केन्द्रीयकृत वित्तीय नीति को लागू करते समय हमें उपरोक्त महत्वपूर्ण तत्व को भी दिमाग में रखना चाहिए।

अतः संघर्ष के क्षेत्रों को एक तरफ आत्मनिर्भर बनाते हुए और दूसरी ओर केन्द्रीकृत योजना को उचित तरीके से लागू करते हुए हम प्रभावी तरीके से युद्ध की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। इसके लिए राज्य और जोनल कमेटियों को योजना, फण्ड वसूली और खर्च पर नियमितीकरण में निर्णायक भूमिका अदा करनी होगी।" यह पार्टी की नीति है। मैंने जानना चाहा कि उनका कुल राजस्व कितना है। क्या यह 1400 करोड़ से ज्यादा है, जैसा कि सरकार दावा करती है? राजू ने हंसते हुए कहा कि यदि उनके पास इतना धन होता तो वे बहुत कुछ करने के योग्य हो सकते थे। वास्तव में यदि यहां सामाजिक शांति होती और वे अपने विभिन्न कार्यक्रम चलाने में सक्षम होते तो वे राजस्व के इस आंकड़े को छू सकते थे। ज्यादातर धन तेंदू पत्ता, बांस, इमली व अन्य दूसरे वनउत्पाद पर 'रायल्टी' के रूप में इकट्ठा की जाती है। बैंक को लूटने या सम्पदा के जब्तीकरण से जो धन मिलता है वह हमारे राजस्व का बहुत ही छोटा हिस्सा है। हां, वे कुछ उन कम्पनियों और ठेकेदारों पर टैक्स लगाते हैं जो उनके 'गुरिल्ला जोन' में काम करते हैं। सरकार इसे जबरन वसूली कहती है जबकि ये इसे टैक्स कहते हैं। वास्तव में इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उनके स्रोत बाहरी नहीं हैं, बल्कि देशीय हैं। जिसे सरकार भी मानने को बाध्य है। इस अर्थ में वे समयसिद्ध, देशभक्त क्रान्तिकारियों की सम्मानित परम्परा के वाहक हैं।

यह उल्लेखनीय है कि 30 साल के पार्टी के हस्तक्षेप से यहां एक बड़ा परिवर्तन हो चुका है जो कि तेंदू पत्ता, बांस, इमली आदि के तोड़ने/काटने के दाम में हुयी महत्वपूर्ण बढ़त से स्पष्ट है। अतः पार्टी जो लेवी आदिवासियों से लेती है, वह न ही आदिवासियों पर बोझ है और न ही बहुत अधिक है। यहां कुछ संदर्भ इस बात के मिलते हैं कि मछली पालन से कितना ज्यादा राजस्व इकट्ठा किया गया। कहा जाता है कि दक्षिण दन्तेवाड़ा में एक आरपीसी ने मछली पालन से पांच लाख की कमाई की। इसका मतलब यह है कि दूसरे आरपीसी भी लगभग इतनी ही कमाई करते होंगे। मैं जहां था वहां की एआरपीसी की मछली पालन से कमाई एक लाख से कम थी। ऐसा लगता है कि आय का स्वतन्त्र स्रोत पूरे डीके में असमान है। लेकिन एक स्तर पर स्वतन्त्र आय पैदा जरूर होती है। यह बाजार की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है। युद्ध की परिस्थिति और बहुत से सामानों की आवाजाही पर प्रतिबन्ध के कारण ये सामान हाट में नहीं पहुंच पाते अन्दर ही उपभोग कर लिये जाते हैं। यदि यह परिस्थिति न होती तो इससे भी कुछ आय होती और इससे आरपीसी तथा एआरपीसी की आय में फर्क पड़ता।

एक महत्वपूर्ण बात जो मुझे बतायी गयी वह यह कि जनताना सरकार एक पेपर प्लांट लगाने जा रही है ताकि यह अपनी जरूरतें पूरी कर सके क्योंकि पेपर खरीदना और उसे अन्दर लाना एक समस्या बन चुकी है। इस क्षेत्र में बांस और पानी बहुतायत हैं। बिना ब्लीच के भी यह अपना काम चला सकते हैं। या कम से कम अपनी न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं। लेकिन इनके सामने जो एक बाधा है वह है ऊर्जा उत्पादन की। यदि वे ऊर्जा उत्पादन माइक्रो हाइड्रल प्रोजेक्ट (इसे लगाना बहुत ज्यादा कठिन नहीं है और इसकी तकनीक या तकनीकी दक्षता अन्दर उपलब्ध है) से करते हैं तो वे इस समस्या से उबर सकते हैं। जनताना सरकारकी यह महत्वाकांक्षा उद्यमिता और प्रतिभा उल्लेखनीय है।

**एक बहुत छोटी व हड़बड़ी वाली मुलाकात**

जब मैं माइ से लौट रहा था तो मैं डीके में सीएनएम के इंचार्ज कामरेड लेंज से और साथ ही चेतना नाट्य मंच के नेतृत्वकारी सदस्य चन्दू से मिला। मैंने वर्षों पहले कामरेड लेंज का साक्षात्कार पीपुल्स मार्च में पढ़ा था। वे बहुत सारी गतिविधियों में शामिल हैं। उन्होंने मुझे बताया कि समय बहुत कम है और रात होने से पहले हमें गन्तव्य तक पहुंचना है। अतः मैंने उनसे पूछा कि अगस्त सितम्बर 2006 के पीपुल्स मार्च में छपे आपके साक्षात्कार के बाद से क्या-क्या परिवर्तन आए हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि हमारी सदस्य संख्या 10000 से ऊपर पहुंच चुकी है। वर्तमान में उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्यभार डीके में पिछले 30 सालों के सांस्कृतिक काम का इतिहास लिखने का लिया हुआ है। उनके कामों में साहित्य, प्लास्टिक आर्ट, संगीत और नृत्य शामिल हैं। इसके सदस्यों ने पिछले दो सालों में 204 गाने तैयार किये हैं। 'झंकार' में उनके अपने सदस्यों द्वारा लिखी कहानियां होती हैं। वे नाटक दिखाने के लिए नुक्कड़ नाटक की कला का प्रयोग करते हैं। मैंने उनसे गानों के विषय के बारे में पूछा। यह प्रचारात्मक होता है। जैसे व्यंग्य या पैरोडी। (उन्होंने बंटी और बबली के लोकप्रिय गाने का प्रयोग करते हुए महेन्द्र कर्मा पर एक पैरोडी बनायी) हालांकि वह कहते हैं कि वे बहुत चुनी हुयी फिल्मी धुनों का ही इस्तेमाल करते हैं और वह भी सिर्फ पैरोडी के लिए। इसके अलावा द्वन्दात्मक भौतिकवाद पढ़ाने के लिए दर्शन और सलवा जुझम के खिलाफ राजनीतिक अभियान आदि भी इसमें शामिल हैं। वे दूसरे उपकरणों के साथ परम्परागत उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं और यहां तक कि वे किकिरह का भी इस्तेमाल करने का प्रयास कर रहे हैं। इसके बारे में उनका कहना है कि यह वायलिन का पूर्व संस्करण है। वे अपने खुद के संगीत कैसेट तैयार करते हैं और उनके पास मोबाइल एडिटिंग यूनिट होती है। उन्होंने कहा कि साक्षात्कार में उन्होंने जो कहा था, वह अभी प्रासंगिक है। सार रूप में निम्न बातों का उल्लेख प्रासंगिक है।

"हम सभी सीएनएम सदस्यों को प्रशिक्षण देते हैं। दस साल के बच्चे से लेकर बड़े तक सीएनएम के सदस्य हैं। उनके उत्साह और गतिविधियों के अनुसार हम उनके विशेष कैम्प चलाते हैं। हम उनकी वैज्ञानिक चेतना बढ़ाने के लिए सरल शब्दों वाले गाने व मार्चिंग गीतसिखाने का प्रयास करते हैं। इसके अलावा बच्चों को नृत्य सिखाते हैं। हम युवा महिला पुरुषों पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। हमें, प्रशिक्षण देते समय भीषण पुलिस दमन झेलना पड़ रहा है। वास्तव में गढ़चिरौली जैसी जगह पर प्रशिक्षण देना एक बड़ी समस्या है।

हम गांव में जाते हैं और सीएनएम सदस्यों को लामबन्द करते हैं। हम 2 से 5 दिन का कार्यक्रम तय करते हैं। इसमें हम कृषि कार्य, मजदूरी और वन उत्पाद के संग्रह के काम को ध्यान में रखते हैं ताकि ये काम प्रभावित न हों। हम उनके साथ उत्पादन कार्यों में भाग लेते हैं और उन्हें प्रशिक्षण देते हैं। हम एक साथ उन्हें कई गाने, नृत्य या साज एक साथ नहीं सिखाते हम उन्हें एक समय में एक गाना एक नृत्य, या एक साज ही सिखाते हैं। हम उन्हें उनकी प्रतिभा, रुचि और सीखने की क्षमता के अनुसार उन्हें प्रशिक्षण देते हैं। इससे अच्छा परिणाम मिलता है। कभी-कभी प्रशिक्षण के भाग के रूप में हम उन्हें गाना लिखना भी सिखाते हैं। उदाहरण के लिए हमने 2002 में दक्षिण बस्तर में 5 दिन का प्रशिक्षण शिविर चलाया था। यहां हमने लेखन के लिए उन्हें प्रोत्साहित करने पर ध्यान केन्द्रित किया था। यहां के लोगों में यह भी विशेषता है कि गाना गाते समय लगातार इसे आशु रूप से विकसित करते रहते हैं. ...

डीके के साज बहुत पुराने हैं। यह 18 तरह के हैं। उनमें से कुछ का ही आज इस्तेमाल होता है। हम इन साजों का इस्तेमाल करते हैं और आधुनिक साजों का भी इस्तेमाल करते हैं। साजों के महत्व को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। हम ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते कि सिर्फ स्थानीय साजों का ही इस्तेमाल किया जाए। हम विभिन्न साजों के सम्मिश्रण का इस्तेमाल कर रहे हैं। संगीत गाने और इसके शब्दों पर भारी नहीं पड़ना



चाहिए। अतः हम कार्यक्रम की जरूरत के अनुसार आधुनिक और स्थानीय साजों का इस्तेमाल करते हैं और इसी रूप में इसे विकसित करते हैं। इनमें से मुख्य हैं 'दप्पी'(तालयंत्र) और 'मेलम'(वायु आधारित साज)... सीएनएम की नियमित पत्रिका झंकार जुलाई-अगस्त 1994 में शुरू हुयी। कामरेडों ने इसमें गोण्डी, हिन्दी, मराठी, बंगाली और तेलगू में लिखा। यह झंकार का एक विशेषता है॥ लेखक मनचाही भाषा में लिख सकते हैं, जिसमें वे अपने आप को अच्छी तरह से अभिव्यक्त कर पाएं। इसमें आदिवासी, गैर आदिवासी, बंगाली, तेलगू, मराठी तथा उड़िया यानी आज के डीके आन्दोलन में विभिन्न क्षेत्रों और राष्ट्रीयताओं के लोग शामिल हैं। अतः झंकार बहुभाषी पत्रिका है। हम प्रयास कर रहे हैं कि जनता के अलावा कैडर में से भी लोग लेखक बनें। वे अपनी सभी समस्याओं, परेशानियों, दुखों और अहसासों को इन गीतों में बखूबी अभिव्यक्त करते हैं। वर्तमान में सीएनएम सदस्य पढ़ना-लिखना भी सीख रहे हैं। हम उनके लेखन में सुधार करके उन्हें छाप रहे हैं। और उन्हें विकसित कर रहे हैं। इस प्रयास में कुछ कमियां भी हैं। हम पूरी तरीके से नए लेखकों और उनके लेखन पर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं और उन्हें विकसित नहीं कर पा रहे हैं...

एक चीज जो मैं उनसे पूछने के लिए बहुत उत्सुक था, कि पार्टी के अन्दर गोण्डी लिपि के बारे में किस तरह की चर्चा है। हमें बताया गया कि अभी इस समय वे गोण्डी लिखने के लिए देवनागरी लिपि का इस्तेमाल कर रहे हैं। लेकिन अब वे इस तर्क पर सहमत हैं कि गोण्डी की अपनी एक अलग लिपि होनी चाहिए। क्यों होनी चाहिए? जॉन मिर्डल ने पूछा। जॉन ने कहा कि उनकी अपनी मातृभाषा स्वीडिश रोमन लिपि में ही लिखी जाती है। लेकिन उसमें तीन वर्णमालाएं और जोड़ी गयी हैं। ताकि विशिष्ट स्वीडिश ध्वनि का इसमें प्रयोग हो सके। सामान्य वर्णमाला को अपनाने का लाभ यह कि आपस में सांस्कृतिक मेलजोल और सीखने की सम्भावना बढ़ जाती है। यदि स्वीडिश के लिए एक अलग लिपि होती तो वह अलगाव में पड़ सकती थी। मैं उनसे सहमत हूं। लेकिन हमें बताया गया कि यह केवल आंशिक सच है। यहां बहुत सी ध्वनियां अनुपस्थित हैं। जैसे 'घ' या 'श'। अतः यदि लोगों के पास उनकी अपनी लिपि होगी जहां वे अपनी विशेष ध्वनियां और उच्चारण को अभिव्यक्त कर सकते हैं। इसके साथ उन्हें स्वयं को पहचानना आसान होगा क्योंकि तब वर्णमाला को पकड़ना आसान होगा और सीखना तेज हो जाएगा। क्या इससे लोग अपनी सांस्कृतिक परिधि के बाहर सम्प्रेषणीयता कायम करने में समर्थ नहीं होंगे? यहां मुद्दा यह नहीं है कि वे सही हैं या गलत। सवाल यह है कि माओवादियों की जो सैन्य और हिंसक छवि पेश की जाती है, उससे यह यथार्थ मेल नहीं खाता जबकि ये माओवादी सदस्य विभिन्न तरीके के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों में लगे हुए हैं। मैं क्या सोचता हूं?

कुल मिला कर मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा? मैंने डीके में माओवादी आन्दोलन का अध्ययन कैसे किया? मैं इस बात से पूरी तरह से सहमत हूं कि यह युद्ध उन सभी युद्धों से एकदम अलग है जो भारत सरकार ने पिछले 63 सालों में छेड़ रखा है। यह एक ऐसा युद्ध है जो भारतीय राज्य की प्रतिरोधक क्षमता की परीक्षा लेगा। जैसा की भारतीय राज्य ने इससे पहले कभी नहीं झेला है। सटीक रूप में कहें तो यह उन लोगों का युद्ध है जो अपनी ही जमीन पर अपने जल-जंगल-जमीन व खनिज के लूटे जाने के खिलाफ लड़ रहे हैं और वे इस बात से सहमत हैं कि उनके पास न सिर्फ अपने आप यानी आदिवासियों के लिए बल्कि पूरी भारतीय जनता के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि है। यह एक भिन्न चीज है जहां जनता यह महसूस करती है कि उनका मुस्तकबिल उन्हें उनकी मुक्ति के लिए प्रेरित कर रहा है और इस प्रक्रिया में देश के निवासी पुरुष और महिलाएं उनके साथ लामबन्द होकर उनके उदाहरण का अनुसरण कर रहे हैं।

भारत में कोई भी दूसरा आन्दोलन अभी तक इतनी महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल नहीं कर पाया है। लेकिन फिर भी इसके बारे में इतना कम लिखा गया है और इसे इतनी ज्यादा गालियां दी गयीं हैं। इसके बारे में बहुत कम बात की गयी है और इसे बहुत कम महत्व दिया गया है। हमसे वो लोग जो 'स्वतन्त्रता और समानता' में विश्वास रखते हैं, उन्हें माओवादियों की इन उल्लेखनीय उपलब्धियों पर प्रसन्न होना चाहिए। इस आन्दोलन ने हमें दिखाया है कि 'जनता की सेवा करो' की भावना हमें कितनी दूर ले जा सकती है। वे कोई संत नहीं हैं। और निस्संदेह कोई पाप करने वाले भी नहीं हैं। वे मनुष्य हैं और उन्होंने हमें दिखाया है कि सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए अडिग प्रतिबद्धता का क्या मतलब होता है। आलोचक उनकी गलतियां निकाल सकते हैं और उन्हें बड़ा करके दिखा सकते हैं। शासक उन्हें खत्म करने की भाषा बोल सकते हैं। (प्रधानमंत्री ने उनका 'उन्मूलन' करने, उन्हें 'लंगड़ा' करने और उनके लिए सभी रास्ते बन्द करने जैसे शब्दों का प्रयोग किया है ) लेकिन इस बात से कतई इंकार नहीं किया जा सकता कि उनकी जड़ें जनता में गहराई से धंसी हैं और इसी कारण उनका अस्तित्व है। वे राजनीतिक रूप से इसी लिए विस्तार पा रहे हैं क्योंकि गरीब और वंचित लोग उनमें भरोसा रखते हैं। सिर्फ माओवादी लोग ही जनता के पास नहीं जा रहे, वरन जनता भी उनके पास आ रही है। उन्हें नए क्षेत्रों में आमन्त्रित कर रही है और रोजमर्रा के संघर्षों में उनकी मदद कर रही है। इस लिए मेरा मानना है कि भले ही उन्हें कुछ धक्का लगे या यहां-वहां उन्हें अपने कुछ आधारों को खोना पड़े, यह आन्दोलन खत्म नहीं होगा। मैं सोचता हूं कि यदि उन्हें एक क्षेत्र से निकाला जाएगा तो वे दूसरे क्षेत्रों में अंकुरित हो जाएंगे। इसी कारण से उन्होंने दावा किया है कि वे क्रान्ति को 50-60 साल के रूप में सोच रहे हैं न कि यहीं और अभी के अर्थ में। वे यहां टिके हुए हैं। यह एक महत्वपूर्ण मोड़ को दर्शाता है।

अतः किसी को भी उनकी उपलब्धियों को छोटा करके नहीं देखना चाहिए। जबकि बुद्धिजीवी और कार्यकर्ता वैकल्पिक विकास के माडल पर बात कर रहे हैं, तो यहां माओवादी लाखों भारतीयों के बीच पिछले तीस सालों से इसे व्यवहार में उतार रहे हैं। वे खेती विकसित करने, सामाजिक आर्थिक सुधारों की शुरुआत करने, सामाजिक मुद्दों पर बहस चलाने के अलावा औद्योगिकरण और खनन नीति पर भी काम कर रहे हैं। परन्तु फिर भी भारत के विशाल परिदृश्य को देखते हुए यह एक बहुत छोटा कदम है। लेकिन क्या भारत में कोई दूसरा राजनीति ढांचा है जो इसके करीब भी पहुंच पाया हो।

विडम्बना यह है कि जो भीदस्तावेज हमें पढ़ने को दिए गए या जो भी बातचीत हमने की उसमें उन्होंने अपनी बहुत सी कमियां, गलतियां और त्रुटियों को स्वीकार करके हमें निशस्त्र कर दिया। हालांकि मैं इसे ईमानदार स्वीकारोक्ति मानता हूं लेकिन मेरा विश्वास है कि इन्हें बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया गया है। एक चीज ने मेरा ध्यान खींचा, कि अधिकांशतः लोग अपनी उपलब्धियों को बढ़ा चढ़ा कर पेश करते हैं, वहीं पार्टी इस बारे में बहुत ही विनम्र है। वे लगातार सामने आ रही समस्याओं और कार्यभारों पर ही चर्चा करते हैं। उदाहरण के लिए मैंने उनसे पूछा कि डीके आन्दोलन पर यात्रा वृत्तांत, रिपोर्टाज और पार्टी डायक्युमेंटेशन आदि के रूप में इतनी कम लिखित सामग्री क्यों है? हिन्दी में कुछ किताबें उपलब्ध हैं। लेकिन ये सब तेलगू या पंजाबी से अनूदित है। पार्टी ने डीके के विकास कामों पर एक बुकलेट निकाली है। यह हिन्दी और अंग्रेजी में उपलब्ध है। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। पी. शंकर की किताब 'यह जंगल हमारा है' को अद्यतन किये जाने की जरूरत है क्योंकि यह 1997 में तेलगू में लिखी गयी थी। बाद में इसे हिन्दी में अनूदित किया गया। मुझे उत्तर मिला कि हमें इसके लिए कभी

भी समय नहीं मिला। क्यों? क्या वे नहीं जानते उनको बदनाम करने का प्रयास करने वाले लोग उनकी इस ज्ञान की कमी का प्रयोग उन्हें बदनाम करने के लिए करेंगे?

हां, उन्होंने ऐसा किया था। सलवा जुझम के शुरुआती दिनों में उन पर यह दोष लगाया गया था कि उन्होंने खुद ही अपने ऊपर 'सफेद आतंक' को आमन्त्रित किया है। उन पर यह आरोप लगाया गया था कि वे आदिवासियों को तेंदू पत्ता तोड़ने से रोक रहे हैं। "जबकि सच यह था कि हम सरकार द्वारा घोषित दाम का विरोध कर रहे थे जो कि 50 पत्ते के एक बण्डल का 50 रु से कम था। जबकि निजी ठेकेदार इससे लगभग दुगना दाम दे रहे थे। उस समय हमने यह अहसास किया कि कुछ बुद्धिजीवी सलवा जुझम शिविर कैम्प द्वारा बतायी गयी बातों पर विश्वास कर के हम पर आरोप मढ़ रहे हैं।" लेकिन उन्होंने अपनी उपलब्धियों को प्रचारित क्यों नहीं किया। वे विकास के वैकल्पिक मॉडल को पूरे आदिवासी समाज में लागू कर रहे हैं। जैसे आर्थिक गतिविधियां, स्वास्थ्य, शिक्षा, उनकी भाषा का विकास (एक नयी लिपि विकसित करना) और आदिवासी संस्कृति की रक्षा करना... । वे डीके के कामों और उनके अनुभवों पर एक लेख लिखने को प्रोत्साहित क्यों नहीं करते थे। मुझे संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। सिवाय शर्मीली मुस्कान के।

मेरे अनुसार वर्षों से डीके को आन्ध्रप्रदेश आन्दोलन के परिशिष्ट के रूप में देखा जाता है। समय बीतने के साथ-साथ इसने यहां अपनी जड़ें जमायी और जनसत्ता के निकाय सुदृढ़ होने लगे। इस दौरान दो दशक बीत गये। इस शताब्दी के मोड़ पर ही लेखकों को यहां बुलाने, क्षेत्र दिखाने और लिखने के गम्भीर प्रयास होने शुरू हुए। इसके बाद सीपीआई माओवादी का निर्माण हुआ जिसका आज कई राज्यों में महत्वपूर्ण प्रभाव है और इसी समय आन्ध्रप्रदेश में आन्दोलन को धक्के का सामना करना पड़ा।

उल्लेखनीय बात यह है कि डीके में पार्टी गरीब आदिवासी और महिलाओं में बहुत मजबूती से अपनी जड़ें जमाये हुए हैं। यह क्षेत्र दशकों से भारतीय राज्य द्वारा उपेक्षित था। राजनीतिक पार्टियों का यहां कोई अस्तित्व नहीं था। ऐसे क्षेत्रों का माओवादियों के लिए बहुत लाभ था। इस लाभ का उन्होंने फायदा उठाया और परिणाम हमारे सामने है। यहां संसाधनों का पूर्ण इस्तेमाल किया गया। पाई-पाई का इस्तेमाल जनता के लिए किया गया। भारतीय राज्य से इसकी तुलना करके देखिए जहां प्रत्येक आवंटित रुपए में महज 12 पैसा जनता तक पहुंचता है। डीके में पार्टी सदस्यों व आन्दोलन की रीढ़ पीएलजीए की किफायतपूर्ण ज़िन्दगी इस तथ्य को स्थापित करती हैं कि सामूहिक काम और जनता की सेवा करो की प्रतिबद्धता द्वारा सीमित संसाधनों में भी बहुत कुछ किया जा सकता है। मैं इस बात का पता नहीं लगा पाया कि उन्होंने संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए कुशलता और निष्पक्षता के बीच के विकल्पों पर बहस की थी या नहीं और इसे कैसे हल किया था। लेकिन स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि जोर इसपर था कि संसाधनों की कम से कम बरबादी करके ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचा जाए। वे पेपर के प्रत्येक टुकड़े को बचा कर रखते थे और उसका उचित इस्तेमाल करते थे। कागज के प्रत्येक टुकड़े को संदेश, निर्देश आदि के लिए रफ के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। ज़िन्दगी यहां बहुत कठिन सुविधा रहित है। पार्टी जो समस्याएं झेल रही है, वह बहुत बड़ी हैं। एक तरफ राज्य का आक्रमण व उसकी घेरेबन्दी है और दूसरी तरफ मानव संसाधन व अन्य संसाधनों की हानि है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि समस्या का सामना करते हुए वे अपनी कमजोरियों को बढ़ा चढ़ा कर पेश करते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई उनके द्वारा हाल में चलाए जा रहे शुद्धिकरण के पार्टी दस्तावेज को देखेगा तो पाएगा कि उसमें पाए जाने वाले ज्यादातर उदाहरण डीके के बाहर के हैं और सम्भवतः आन्ध्र प्रदेश हैं। मैं कुछ उदाहरण देता हूँ।

1. कुछ जगहों पर विगत में जमीन्दारों से जब्त की गयी जमीने सरकारी दमन के कारण परती पड़ी हुई हैं। जब ये जमीन्दार इन जमीनों को बेचने की कोशिश करते हैं तो धनी और मध्यम किसान उन्हें खरीद लेते हैं। ऐसे मौकों पर कृषि मजदूरों और गरीब किसानों (जिन्होंने इस जमीनों पर कब्जा किया था) के माध्यम से जमीन खरीदने वाले लोगों पर दबाव बनाना और जमीन की बिक्री को रोकने की बजाए स्कवैड खुद जमीन खरीदने वाले धनी या मध्यम किसानों को दण्ड दे रहा है।

2. बुरी आदतों जैसे शराबखोरी के खात्मे के खिलाफ संघर्ष में जनता को दूरगामी तौर पर शिक्षित करने के प्रयास में कमी है। अरक के निर्माण को रोकने के संघर्ष में जनता खासतौर पर महिलाओं को लामबन्द करने की बजाय सिर्फ स्कवैड ऐक्शन को प्रमुखता दी जा रही है। वर्ग आधारों को ध्यान में रखे बिना शारीरिक दण्ड दिया जा रहा है।

3. पुरुष महिला के सम्बन्धों में समस्या आने पर, विशेषतौर पर शादी के मामले में समस्या आने पर महिलाओं को जिन सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें बिना ध्यान में रखे निर्णय दिये जा रहे हैं।

4. विभिन्न तरीके की जन पंचायतों में गांव के दूसरे लोगों से जरूरी सूचनाएं इकट्ठा करने के अलावा दोनों पक्ष के वक्तव्यों को सुनने की बजाय संकीर्णतावाद के प्रभाव में एकतरफा निर्णय सुनाया जाता है।

5. जब जनता के बीच के कुछ लोग गलतियां करते हैं, जब वे हमारे जनसंगठन का विरोध करते हैं या जब उन पर मुखबिर होने का संदेह होता है तो उन्हें उनकी गलती से कहीं अधिक सजा दी जाती है...

अब स्कवैड से आगे बढ़ कर प्लाटून बन चुका है और प्लाटून से आगे कम्पनी बन चुकी और आज वे बटालियन के बारे में चर्चा कर रहे हैं। बस्तर में जिन जमींदारों की जमीने जब्त की गयी हैं और उन्हें जनताना सरकार द्वारा गरीब आदिवासियों में बांटी गयी हैं, उन जमीनों को पुराने जमीन्दार बेचने में या उस पर दुबारा कब्जा करने में सक्षम नहीं हैं। आन्ध्र प्रदेश में जो हुआ यह उसके विपरीत है। आन्ध्र प्रदेश में जो जमीने वितरित की गयीं, वे परती पड़ी रहीं और जमीन्दारों ने उसे बेचने का प्रयास किया तो उसे स्कवैड ऐक्शन से रोका गया। निस्संदेह सलवा जुद्ध के चरम दौर में कुछ जमीने ऐसी थीं जो परती पड़ी रहीं। लेकिन अब आदिवासी किसान उन्हें जोतने के लिए लौट चुके हैं। अब परती पड़ी जमीनों का आकार बहुत कम है। बस्तर में जनताना सरकार गरीब किसानों को बीज और ऋण देती है। इस ऋण से ये किसान बैलों की जोड़ी खरीदने में सक्षम हो पाते हैं। इस तरह जनताना सरकार उन्हें बेल्टे से जुताई के बजाए हल से जुताई करने को प्रोत्साहित करती है। इसके अलावा डीके के जनताना सरकार क्षेत्र में शराब की कोई दुकान नहीं है। यहां पर सिर्फ परम्परागत शराब ही बनायी जाती है। इस लिए शराब की दुकानों के खिलाफ महिलाओं की लामबन्दी, जो आन्ध्र के शुरुआती दौर के आन्दोलन में बहुत प्रभावी थी, की यहां कोई जरूरत नहीं है। वास्तव में शराबखोरी की समस्या यहां बहुत ही कम है। यहां जो सजा दी जाती है वह की जाने वाली गलती से ज्यादा नहीं होती है। यहां की जनता गर्व महसूस करती है कि यहां सामान्य अपराध बहुत कम हैं। अन्त में एक आदिवासी कामरेड ने कहा कि आन्ध्रप्रदेश में डीके के विपरीत पार्टी सदस्य कुछ आलसी हो गये थे। उसने कहा कि यहां डीके में हम सभी काम खुद करते हैं। यहां तक कि अपनी सप्लाई को भी खुद ढोते हैं। और जब हम हाट से कुछ लाते हैं तो सभी को

इसे बारी-बारी से ढोना पड़ता है। आन्ध्र प्रदेश में लोग मोबाइल का इस्तेमाल करते थे और सामान के लिए मोबाइल से ही आदेश देते थे और सामान ट्रैक्टर या जीप में वहां पहुंच जाता था। उसने कहा कि वे मुखबिरों के सामने खुल गए थे और दुश्मन की घुसपैठ आसान हो गयी थी।

शुद्धिकरण दस्तावेज में उद्धृत आन्ध्र प्रदेश में हुयी ये गलतियां क्या एक तरह से कैडरों के लिए एक संकेत नहंी है कि वे इन गलतियों से अवगत हों और इनसे परहेज करें? मैं तो ऐसा ही सोचता हूं। डीके में पार्टी के प्रति जनता का इतना भरोसा और प्रभाव है कि सीपीआई के स्थानीय नेताओं के बहुत प्रयास करने के बावजूद, जहां वे माओवादियों के प्रति बुरी बातें कहते हुए जनता को चेता रहे थे कि यदि वे माओवादियों को समर्थन देना बन्द नहीं करेंगे तो वे गिरफ्तार हो जाएंगे या पुलिस उन्हें परेशान करेगी। लोहंडीगुडा में सीपीआई की आदिवासी महासभा ज्यादा किसानों को इस बात के लिए तैयार नहीं कर पायी कि वे अपनी जमीन टाटा से ज्यादाक्षतिपूर्ति लेकर बेच दें। सीपीआई का यह रुख विगत के उसके रुख से अलग है। सीपीआई के महासचिव एबी बर्धन ने 'आपरेशन ग्रीन हण्ट' के बारे में बोलते हुए कहा था कि यह 'कम्युनिस्टों को खत्म करने' या 'जो लाल झण्डा के वाहक हैं', उन्हें खत्म करने की नीति है। (देखिए द ट्रिब्यून, 5 अक्टूबर 2009)

इसे भी देखा जा सकता है कि आज माओवादी बस्तर में आदिवासियों के लिए लड़ने वाली एकमात्र ताकत है। इसका यह मतलब नहीं है कि माओवादी जो भी बोलते या करते हैं, उससे उनकी 100 प्रतिशत सहमति है। इसका सिर्फ इतना मतलब है कि जनता की नज़र में वे एक वैधानिक ताकत हैं जिनपर भरोसा किया जा सकता है। इसे इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। कल्पना कीजिए एक ऐसे क्षेत्र की जहां भ्रष्ट और दमनकारी वन विभाग को भगा दिया गया हो, बेहतर मजदूरी की लड़ाई लड़ी गयी हो, भूमि सुधार लागू किया गया हो, जहां पार्टी की जड़ें गरीबों में और विशेषकर महिलाओं में मजबूती से धंसी हों और वह उनके साथ उनके सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष कर रही हो, उनकी संस्कृति समृद्ध हो रही हो, जहां वे सबसे वंचित के साथ कंधे से कंधा मिला कर खड़े हों... और तब आपको यह अहसास होगा कि ज्यादातर आदिवासी क्यों माओवादियों को अपना मानते हैं। यह उल्लेखनीय है कि शहरी बुद्धिजीवियों का माओवादियों के प्रति जो घृणित दृष्टिकोण है वह यहां के आदिवासियों के उस हिस्से के दृष्टिकोण से मेल खाता है जो लम्बे समय तक अपने ही आदिवासी भाइयों के ऊपर सवारी गांठ रहे थे और जिन्हें माओवादी आन्दोलन ने अपने तीस साल के संघर्ष में हाशिए पर धकेल दिया है। यह दावा बिल्कुल गलत है कि आदिवासी राज्य और माओवादियों के बीच पिस रहे हैं। वास्तव में माओवादी खुद आदिवासी हैं। निस्संदेह 'बाहरी' होने का आरोप बहुत हास्यास्पद है। बाहरी तो सुरक्षा बलों के लोग, नौकरशाह, पुलिस अफसर, कारपोरेट लुटेरे ...हैं।

एक सवाल जो लगातार मेरे दिमाग में उठ रहा था कि माओवादी आन्दोलन की, अपनी इस मजबूत पकड़ वाले जंगल से निकल कर इससे बाहर की दुनिया में अपना में अपना काम फैलाने की क्या योजना है?

जीएस ने अपने साक्षात्कार में हमें बताया-"हमारे सामने निश्चित रूप से यह एक चुनौती है। लेकिन हमें विश्वास है कि दूरगामी तौर पर हम लाभ की स्थिति में हैं। जिसे हम छोटे समय में प्राप्त नहीं कर सकते। दुश्मन की इच्छा के विपरीत, जो हमें कम से कम समय में खत्म करना चाहता है, हम इस युद्ध को फैलाना चाहते हैं। ताकि परिस्थितियां हमारे पक्ष में और क्रान्ति के अनुकूल बदल जाएं।" इससे जो मैं समझ पाया वह यह कि वे इस युद्ध की प्रक्रिया में अपना विस्तार करने की इच्छा रखते हैं। उनका कहना है कि यह युद्ध उन पर थोपा

गया है। जैसा कि विगत के दो जनजागरणों और सलवा जुझम के दौरान हुआ, वे यह विश्वास करते हैं कि यदि वे अपने कोर को बचा कर रख पाए तो चाहे कितनी भी विपरीत परिस्थितियां आएं वे दूसरी कई जगहों पर अंकुरित हो जाएंगे। यह आकलन कितना यथार्थवादी है? इसमें एक चीज महत्वपूर्ण है कि जो उन्होंने भारतीय क्रान्ति की रणनीति और कार्यनीति में लिखा है, वह यह कि -"विभिन्न देशों में क्रान्तिकारी युद्ध चाहे जो भी रूप अखितयार करे उसकी अन्तर्वस्तु हमेशा समान होगी- सशस्त्र बलों द्वारा सत्ता पर कब्जा।"

मैं इसकी व्याख्या करता हूं। मुझे लगता है कि हिंसा और अहिंसा के बारे में जो बहस है वह अवास्तविक और अस्पष्ट है। मैं जनता के सशस्त्र प्रतिरोध के उसके अधिकार का समर्थन करता हूं क्योंकि दमन के खिलाफ लड़ाई चाहे जिस रूप में की जाए वह वैधानिक है। मैं यह भी सोचता हूं कि जब तक जनता सशस्त्र नहीं होगी तब तक हिंसा पर शासक वर्ग के आधिपत्य को निष्क्रिय नहीं किया जा सकता। जिसे शासक वर्ग मुख्यतः जनता के खिलाफ ही इस्तेमाल करता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि 'इन्टरनेशनल ऐक्शन नेटवर्क ऑन स्माल आर्म्स' के अनुसार भारत में लगभग 40 मिलियन निजी हथियार हैं।<sup>ix</sup> यह जानने के लिए किसी राकेट साइन्स की जरूरत नहीं है कि ये लाखों-लाख हथियार मुख्यतः उनके पास हैं जो सत्ता में हैं और जो विशेषाधिकार सम्पन्न हैं। वास्तव में अहिंसा पर तमाम उपदेशों के बावजूद भारत सबसे सशस्त्र राज्य है। चाहे उसके पास मौजूद विध्वंसात्मक हथियारों की बात हो या फिर उसकी सैन्य संख्या की बात हो। इसके अलावा ये सशस्त्र बल कई तरह के काले कानूनों से लैस हैं और इस तरह से शासक वर्ग को इस योग्य बनाते हैं कि वह 'धीमे जनसंहार' कर सके। यह कटु लेकिन सत्य बात है कि छः वर्ष से कम के 45 प्रतिशत बच्चे कुपोषण और इससे जुड़ी बीमारियों से ग्रस्त हैं। यदि कैलोरी उपभोग की बात करें तो इसे 2400 से घटा कर 1500 से 1800 कर दिया गया है और इस तरह से सांख्यिकी में गरीबी स्तर से नीचे रह रही जनता की संख्या घट गयी और तत्पश्चात लाखों-लाख भारतीयों को उनके खाद्य सुरक्षा अधिकार से वंचित कर दिया गया। इससे ये लोग एक धीमी मौत की राह पर बढ़ चले हैं।<sup>x</sup> अतः यह कहना कि हिंसा की कोई भूमिका नहीं है या मुक्ति में इसका कोई मूल्य नहीं है, एकदम गलत है। इसका मतलब जनता को यह समझाना है कि वे इंतजार करें और एक दिन उनकी झोली खुद ही भर जाएगी। यह धार्मिक विश्वास और साहस की बात हो सकती है लेकिन तथ्य यह है कि वंचित जनता 63 साल के इसके व्यवहार से अब बदहवास होने लगी है। याद कीजिए कि माओवादियों से लड़ने वाला राज्य भी इस बात से इंकार नहीं करता कि माओवादी गरीबों में भी सबसे गरीब लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तथ्य पर ध्यान दीजिए कि 1960 के दौर के मध्यवर्गीय युवा विद्रोहियों की प्रशंसा की जाती है (जो बाद में पीछे हट गए) लेकिन आज माओवादियों शामिल वंचितों की भर्त्सना की जाती है। क्या इस तथ्य में भी वर्ग दृष्टिकोण काम नहीं कर रहा है?

महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक राज्य का हिंसा पर एकाधिकार होगा वे जनता के जीवन को अपमानपूर्ण और दास जैसा बनाए रखने में सक्षम रहेंगे। स्वतन्त्रता और मुक्ति मध्यवर्गीयों का विशेषाधिकार है। मजदूर जनता दमनकारी स्वतन्त्रता का सामना करती है। जैसे ही जनता लामबन्द होने में सफल होती है और व्यवस्था में निहित असमानताओं और कमियों पर सवाल उठाने लगती है तो वह राज्य के दमन का शिकार हो जाती है। जब राज्य किसी राजनीतिक पार्टी को प्रतिबन्धित कर दे, उसकी विचारधारा को अपराध की श्रेणी में डाल दे, जनता को लामबन्द करने और अपनी राजनीति का प्रचार करने की अनुमति न दे और सैन्य रूप से उनका दमन करने के लिए भारी सैन्य बलों की तैनाती कर दे तब इस तर्क से असहमत होने का कोई कारण नहीं

बनता कि जनता को इसका मुकाबला सशस्त्र होकर करना चाहिए। इस तथ्य पर ध्यान दीजिये कि 1971 में 45000 सैनिकों वाली सेना की तीन डिवीजनों को 'ऑपरेशन स्टीपल चेस' के नाम से उनके खिलाफ लगाया गया था जबकि वे राज्य के लिए कोई खतरा नहीं थे। इससे यही पता चलता है कि दमन और उत्पीड़न से जनता की मुक्ति के किसी भी आन्दोलन को राज्य की दमनकारी शक्ति का सामना करना ही पड़ता है। इस अर्थ में यदि माओवादी अपनी लड़ाकू क्षमता को विकसित नहीं करते तो कबका खत्म हो चुके होते और उनके खात्मे पर दुख मनाने की कौन कहे अधिकांश इसे नोटिस में भी नहीं लेते। यह आश्चर्यजनक है कि इस बात को उचित तरीके से नहीं समझा गया कि माओवादियों की उपस्थिति के कारण ही बहुत से सुधारवादियों और असंतुष्टों को सरकारी नीतियों में परिवर्तन के लिए अपनी मांग रखने का एक अवसर मिल जाता है। यह कहते हुए मेरा यह मतलब नहीं है कि भारत के सभी हिस्सों में सामाजिक बदलाव को आगे बढ़ाने के लिए सैन्य ऐक्शन एकमात्र रास्ता है। इसके अलावा यह भी तथ्य है कि उनकी सैन्य ताकत अभी बहुत कमजोर है। पीएलजीए की संख्या 10000 और जन मिलीशिया की 50000 है। इसका मतलब यह है कि उन्हें अपनी राजनीति के बारे में सजग रहना होगा। बन्दूक लड़ाई नहीं करती बल्कि इसे पकड़ने वाली जनता लड़ाई करती है। भारत एक बड़ा देश है और सामाजिक-आर्थिक विकास सहित कई रूपों में काफी भिन्न है। भारत के बड़े क्षेत्रों में जैसे उन 34 जिलों में जहां माओवादी अपेक्षाकृत मजबूत हैं जो परिस्थितियां विद्यमान हैं वे उन दूसरी जगहों की जहां जनसंख्या घनत्व ज्यादा है, की परिस्थितियों से मेल नहीं खाती। इन असमानताओं को ध्यान में रखना होगा।

मार्क्स ने कहा था कि क्रान्ति 'यदि सम्भव हो तो शांतिपूर्ण और यदि जरूरत हो तो सशस्त्र' होनी चाहिए। तो उन्होंने यह अहसास नहीं किया था कि इन दोनों के समन्वय की भी, जैसा कि नेपाल के माओवादियों ने अपनी शुरुआती सफलताओं में दिखाया है, जरूरत हो सकती है। अतः पहले क्या होगा, या कब होगा या शांतिपूर्ण और सशस्त्र के बीच क्या सम्बन्ध होगा यह सब परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है। इसके बावजूद इसकी जिम्मेदारी सिर्फ माओवादी की नहीं है। इसकी जिम्मेदारी मुख्यतः उस राज्य की है जो उन्हें प्रतिबन्धित करने के बाद उनका शिकार कर रहा है, उन्हें गिरफ्तार कर रहा है व उन्हें मार रहा है।

जंगल के मजबूत गढ़ से बाहर के मैदानी इलाकों में छलांग लगाने के लिए सैन्य विजय पर्याप्त नहीं होगी क्योंकि यहां सवाल राजनीतिक रूप से टिकने का होगा। एक क्षेत्र में जो तरीका उपयोगी है, वह दूसरे क्षेत्रों में भी उपयोगी हो यह जरूरी नहीं। अतः मैं उनके द्वारा चुने गए रास्ते के बारे में पूरी तरह से असहमत तो नहीं लेकिन थोड़ा भ्रमित जरूर हूं। मैं यह भी मानता हूं कि जैसे-जैसे वे उन दूसरे तरह के यथार्थ जो भारत के अन्य जगहों का यथार्थ है के करीब आएंगे, उनका व्यवहार भिन्न होगा और उनका सिद्धान्त भी प्रभावित होगा। खैर, अभी इस तरह का तर्क करना बहुत ही अपरिपक्व है। क्यों कि वे खुद इस बात को स्वीकार करते हैं कि अभी उन्हें बहुत लम्बा रास्ता तय करना है। वे उन वाम आन्दोलनों के अन्ध-गन्तव्य को अच्छी तरह समझते हैं जो व्यवस्था के अन्दर काम करने तक सीमित हो गए हैं और कोई वैकल्पिक सपना देने में अक्षम हो गए हैं और उनके आगे बढ़ने की गति अवरुद्ध हो चुकी है। उनका अपने आन्दोलन के बारे में यह आकलन है कि वे भले ही कमजोर हों लेकिन जनता उनके आन्दोलन को आशा भरी नजरों से देख रही है। चूंकि यह उनके ब्राण्ड की राजनीति से जुड़ी हुयी है और वे यह मानते हैं कि उनका एक दूरगामी परिप्रेक्ष्य है। अतः उनके अनुसार उनकी सफलता या असफलता का निर्धारण भविष्य में होगा आज और अभी नहीं। अतः यह अच्छी तरह से स्पष्ट है कि माओवादी सामाजिक परिवर्तन के अपने लक्ष्य से डिगेंगे नहीं जिसमें उन्होंने आधी शताब्दी का

अपना संघर्ष निवेशित किया है। माओवादियों को इस बात का उपदेश देने से पहले कि वे राज्य और समाज को बदलने का काम शांतिपूर्ण तरीके से करें, उन्हें इस बात को व्याख्यायित करना चाहिए कि क्या भारतीय राजनीति व्यवस्थाके अभिजात्य वर्ग माओवादियों को खुले में काम करने की अनुमति देंगे, वह भी तब जबकि उन्हें व्यवस्था के लिए एक खतरे के रूप में देखा जा रहा है। इसके अलावा शांतिपूर्ण रास्ते के वकीलों को यह भी सोचना चाहिए कि शांतिपूर्ण रास्ते की चाल द्वारा कैसे आन्ध्रप्रदेश में 2004-05 में उन्हें खतम किया गया। तथ्य यह है कि माओवादी भयानक परिस्थितियों के बावजूद न सिर्फ अपना अस्तित्व बचाए हुए हैं बल्कि सुदृढ़ हो रहे हैं और विस्तार पा रहे हैं। और उनका कथन उनके व्यवहार से मेल खा रहा है। यह भारत में बहुत से वाम धड़ों से अलग उन्हें एक विशिष्ट स्थान देता है। इसी कारण से दूसरे वामदलों से कहीं ज्यादा उन्हें निगरानी में रखा जा रहा है। जैसे सफलता प्रशंसक पैदा करती है वैसे ही अर्ध सफलता आलोचक पैदा करती है। यह सत्य है कि आज के उनके आलोचक कल उनके प्रशंसक होंगे।

वहां तक पहुंचने के लिए उन्हें भारत की बहुलता और विभिन्नता के साथ तालमेल बिठाते हुए नया रास्ता निकालना होगा। युद्ध को सैन्य रूप से जीता जा सकता है लेकिन क्रान्तिकारी युद्ध अन्ततः राजनीतिक मोर्चे पर ही जीता जाता है। बिना जनवाद के 21वीं शताब्दी के भारत में यह नहीं किया जा सकता। जनवाद कार्यनीतिक सवाल नहीं है। कोई औपचारिक जनवाद की आलोचना करते हुए उसे अस्वीकृत कर सकता है लेकिन वास्तविक जनवाद सभी क्रान्तिकारियों का केन्द्रीय सरोकार है और होना चाहिए। लेकिन 'नया' जनवाद किस तरह का होगा, इसे देखना है क्योंकि माओवादियों के सामने यह वास्तविक चुनौती है। आरपीसी अभी व्यवस्था का एक भ्रूण रूप है जहां जनता अपने लिए इसमें सीधे हिस्सेदारी करती है। यह एक आगे बढ़ा हुआ कदम है। लेकिन डीके की अपनी कुछ खास विशेषताएं हैं जिसे राज्य ने सदियों से उपेक्षित कर रखा था। लेकिन उन्हें यह बात दिमाग में रखनी होगी कि दूसरी जगहों पर सैकड़ों सालों के संघर्षों द्वारा भारतीय मजदूर वर्ग (शहरी और ग्रामीण दोनों) ने कई तरीके की स्वतन्त्रताएं हासिल की है। इनमें बहुत सी स्वतन्त्रताएं वैधानिक रूप ले चुकी हैं और आज जिनपर आक्रमण किया जा रहा है। अतः यदि माओवादी उन जगहों पर जहां उनका प्रभाव बिल्कुल नहीं है या बहुत कम है, मजदूर जनता को अपने पक्ष में करना चाहते हैं तो उन्हें इस पर ध्यान देना होगा। वह यह सब कैसे करेंगे? वे मध्यवर्ग को अपने पक्ष में कैसे मिलाएंगे, जिसका इस्तेमाल जन असंतोष और बहसों में किया जाता है और जो हर चीज के बारे में अपनी राय रखता है। जब जीएस ने पार्टी द्वारा लाखों करोड़ों जनता के बीच काम करने की जरूरत के बारे में कहा तो क्या वह इस यथार्थ की ओर इशारा नहीं कर रहे थे?

राजनीतिक बहुलता सांस्कृतिक विभिन्नता की तरह ही भारत की एक पहचान बन चुकी है। अतः क्या वे इस बात को स्वीकार करने और सम्मानित करने को तैयार हैं कि वे एक नेतृत्वकारी ताकत तो हो सकते हैं लेकिन जरूरी नहीं कि वे ही एकमात्र नेतृत्वकारी ताकत हों। लेकिन जनता पहले से कहीं अधिक इस कथन पर विश्वास करना चाहती है कि न सिर्फ परिवर्तन सम्भव है बल्कि इसके परिणामस्वरूप वास्तविक जनवाद भी सम्भव है। वह एक वैकल्पिक जनवादी मॉडल चाहती है। और आज केवल माओवादी ही इस स्थिति में हैं कि वे इसे दिखा सकते हैं क्योंकि सिर्फ उन्हीं के पास आधारक्षेत्र है जो बीमार व्यवस्था के बाहर एक भिन्न चीज है। अपनी व्यवस्था को बेहतर या विशिष्ट के रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्हें लापरवाह तरीके से हत्याएं नहीं करनी चाहिए जैसा कि जमुई में किया गया और फिर तुरंत माफी मांग ली गयी जिससे सहमत नहीं हुआ जा सकता। गला



काटना भी ऐसा ही उदाहरण है। कोरापुट जिले में कुल्टा आयरन वर्क में सीढ़ से जुड़े एक ट्रेड यूनियन नेता थामस मुण्डा को माओवादियों द्वारा बुलाए बन्द की अवहेलना करने के कारण मार दिया गया। इन घटनाओं से उन्हें हम अपना नहीं बना सकते जो हमारे साथ नहीं हैं लेकिन जिन्हें अपनी ओर मिलाए जाने की जरूरत है। मैं जानता हूँ कि जनान्दोलनों में इस तरह की गलतियाँ होती हैं और ऐसे अपराध घटित होते हैं। लेकिन मेरे लिए निर्णायक बात यह है कि क्या वे अपनी गलतियों से सीखने को तैयार हैं? यदि हाँ तो कितनी तेजी से सीखते हैं। यह इस लिए नहीं कि मैं हिंसा से परहेज करता हूँ लेकिन क्रान्तिकारियों द्वारा किये जाने अपराध पूरे प्रतिरोध आन्दोलन को बदनाम करते हैं। हजारों-हजार सामान्य माओवादी कैडरों के निःस्वार्थ काम को छोटा कर देते हैं और उन्हें चुप करा देते हैं जो माओवादियों से उच्चतर नैतिक मापदण्ड की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि क्रान्ति एक बेहतर लोकतान्त्रिक राज्य और समाज बनाने की लड़ाई है। जैसा कि लेनिन ने कहा है कि क्रान्ति 'उस एक्सप्रेस गाड़ी की तरह की नहीं है जो स्टेशन पर धीरे-धीरे पहुंचती है।' न ही इसका मतलब पश्चगामी है। जीएस ने अपने साक्षात्कार में मुझे बताया- "जनता और माओवादी क्रान्तिकारी सामान्यतः किसी के साथ भी सशस्त्र संघर्ष या हिंसा नहीं चाहते। बहुत अपरिहार्य परिस्थितियों में ही वे हथियार उठाते हैं और अपने दुश्मन का मुकाबला करते हैं। जनता इतिहास से सीखते हुए अपना मुक्ति युद्ध चला रही है। अतः हमारे अनुसार यह आत्मरक्षा का युद्ध है।" मैं उनकी इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ। बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ है। यह बात सभी गुरिल्ला और प्रतिगुरिल्ला युद्धों के लिए सत्य है कि कार्यनीतिक गलतियाँ रणनीतिक पराजयों में बदल सकती हैं। इस कारण से नागरिकों या गैर सुरक्षा बलों को निशाना बना कर की जाने वाली लापरवाह हिंसा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह भी तब जब हम यह जानते हैं कि बहुत बड़ी मात्रा में भारतीयों द्वारा विरोध के बावजूद जो युद्ध भारतीय राज्य ने माओवादियों के ऊपर थोपा है वह निकट भविष्य में जल्दी रुकने वाला नहीं है। क्रान्तिकारी जीवन के लिए लड़ते हैं इस लिए हिंसा का इस्तेमाल बहुत अनुशासन के साथ करना चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि दस 'नन फंडेड' नागरिक स्वन्त्रता समूहों द्वारा जारी अपील अनसुनी ही रह गयी।<sup>xi</sup> 10 इतनी ज्यादा आशा जगाने के बाद और अपने साहस और निःस्वार्थ भावना को दिखाने के बाद वे इसे किसी शार्टकट या अनुशासन हीनता की बेदी पर न्योछावर नहीं कर सकते। यदि पार्टी जनवाद का व्यवहार नहीं करती, असमान राजनीतिक विकास को सम्बोधित नहीं करती और डीके और दूसरे क्षेत्रों में अपने व्यवहार एवं सामान्य व्यवहारिक कानून के बीच अन्तर को नहीं पाटती तो उन्होंने अपने खून पसीने से जो उल्लेखनीय रूपान्तरण हासिल किया है और जनता की आशाओं को इतना ऊंचा उठाया है, वे नष्ट हो सकती हैं। तब यह उनके और भारतीय जनता के लिए एक बड़ी त्रासदी होगी।

## अन्त में

चांद मेरे चेहरे पर चमक रहा था, तभी मेरी नींद खुल गयी। पिछले पन्द्रह दिनों की यात्रा में प्रत्येक रात हमने चांद को बढ़ते हुए देखा। नए चांद से पूरे चांद तक। इस पखवाड़े का यह अन्तिम दिन था। आज पूरा चांद होगा। सुबह के साढ़े तीन बजे थे। और मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैं उठ कर बैठ गया। आज हमें लौटना था। मेरा मन भारी हो रहा था। जॉन ने नींद से जागते हुए मुझसे पूछा कि क्या कोई परेशानी है? मैंने कहा कि मुझे नींद नहीं आ रही है। मैं इस अहसास से घिरा हुआ हूँ कि क्या मैं इन्हें दुबारा देख पाएंगे? क्या ये नौजवान पुरुष और महिलाएं दुबारा हमारे आस-पास होंगे? ये पार्टी सदस्य व कामरेड जिनके साथ हमने इतना वक्त गुजारा, बातचीत की, स्पष्ट बहस की, क्या वे फिर हमारे आस-पास होंगे? उन्होंने कहा, हां इन सबसे मिलना बहुत उल्लेखनीय रहा और मेरे लिए तो विशेषतौर पर क्योंकि यहां मुझे दादा (ग्रैंड फादर) के रूप में प्यार मिला।

स्वीडन से आने वाले मेरे जैसे के लिए यह आश्चर्यजनक था। उन्होंने कहा कि तुम यहां दुबारा आ सकते हो जबकि मैं तो काफी बूढ़ा हो गया हूं और मुझे नहीं लगता कि मैं यहां दुबारा आ पाऊंगा। हम फुसफुसा कर बात कर रहे थे। लेकिन अहसास नहीं मिटा। अतः 'सीमा' पर जैसे ही बिदाई का वक्त आया, नीति मेरे पास आयी और कहा-"भाई मुझे बहुत बुरा लग रहा है कि आप लोग जा रहे हो।" मैंने कहा मुझे भी बुरा लग रहा है। उसने कहा "हम यही बात कर रहे थे कि जॉन सर से तो अब कभी मिलना नहीं होगा लेकिन आप वापस आओगे न?" मैंने उनसे कहा कि मैं वापस आने का और उनसे मिलने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने दूंगा। यह मेरा पक्का वादा था। हम सबके लिए वह कितना उदास दिन होगा यदि ये महिला और पुरुष उन ताकतों द्वारा मारे जाते हैं जो इन नौजवान लोगों के पीछे कीप्रेरणा को न तो जानते हैं और न ही उसकी इज्जत करते हैं। इनके लिए पार्टी का क्या मतलब है, इन्होंने हथियार क्यों उठाया, इन्होंने अब तक क्या हासिल किया है, वे क्यों लड़ रहे हैं और उनके सपने क्या हैं। इस लिए हमें उन्हें किसी भी तरह से नीचा नहीं होने देना चाहिए और इन लोगों की जिन्दगियों के नष्ट होने का विरोध करना चाहिए जो हमारे अपने ही लोग हैं।

[आभार: बहुत से लोगों ने मेरे इस ड्राफ्ट को पढ़ा और मुझे सुझाव दिये। **बर्नार्ड (डिमेलो)** और **सुमन्तो (बनर्जी)** ने अपने विस्तृत कमेंट दिये। जबकि **शर्मिला** जैसे लोगों ने संक्षेप में अपना कमेंट दिया। कइयों ने इसे वापस नहीं किया क्योंकि मेरे हिसाब से उन्होंने इसे पसंद किया। मैं **पीयूडीआर** के अपने साथियों और **पर्सपेक्टिव** के अपने मित्रों का भी आभार व्यक्त करना चाहता हूं जिन्होंने मुझे सोच व्यक्त करने का मौका दिया और जिनके खोजी सवालोंने मुझे अपने विचारों को संगठित करने में मेरी मदद की। मेरे बच्चे **नेहा** और **सरल** और भूतपूर्व पत्नी **इंग्रिड** के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहता हूं जिन्होंने मुझ पर विश्वास किया और बिना बोझ के अहसास के यह काम करने का साहस दिया। इन सभी को मैं हृदय से आभार देता हूं। **सहबा** मेरे साथ अपने तीखे राजनीतिक मतभेदों के बावजूद हमेशा मेरे साथ रही; पहले भी, जब मैं बाहर था और उसे नहीं पता था कि मैं कैसा हूं और फिर जब मैं वापस आ गया और उसे आधी रात को जगा दिया कि अचानक मुझे कुछ हो गया था या मैं उन कामरेडों को मिस कर रहा था जिन्हें मैं जानता था या मुझे नींद नहीं आ रही थी...पता नहीं क्यों... माओवादियों के प्रति अपने 'समर्थन' के लिए मैं खुद जिम्मेदार हूं और जो भी मैं ईमानदारी पूर्वक और सच्चाई पूर्वक लिख सका हूं उसके लिए भी मैं खुद ही जिम्मेदार हूं।]

## नोट्स

<sup>i</sup> सुरक्षा बलों के पास हल्के मोर्टार, मशीन गन, राकेट लांचर, इंसास रायफल, एफएन 35 और ग्लॉक पिस्तौल, एकर एण्ड कोच एमपी 5 मशीन गन तथा कार्लगुस्ताव रीकोनेसेंस रीक्वाएलेस रायफल...होती है। इसके अलावा उनके पास एयर फोर्स की सुविधा भी है जो उन्हें युद्ध क्षेत्र से सैनिकों को लाने ले जाने के लिए हेलीकॉप्टर मुहैया कराता है और हवाई निगरानी करता है...। माओवादियों का दावा है कि उनके पास इंसास रायफल, एके 47, एसएलआर और बड़ी मात्रा में आयुध सामग्री है।- *हिन्दुस्तान टाइम्स*, 10 अक्टूबर 2009।

<sup>ii</sup> नक्सलियों व माओवादियों के खिलाफ युद्ध में खून-खराबे का एक लम्बा इतिहास है। उदाहरण के लिए खुद पुलिस के आकड़े के हिसाब से मार्च 1770 से अगस्त 1971 तक कलकत्ता और उसके आसपास में 1783 सीपीआई एमएल समर्थकों की हत्या की गयी। 21 अगस्त 1971 को कलकत्ता के बारानगर के पास सिर्फ एक दिन में ही और एक जगह से ही 1000 नौजवानों की हत्या की गयी। भागने के सभी रास्तों को बन्द कर दिया गया और उन रास्तों पर पुलिस बैठा दी गयी। 1973 तक 32000 सीपीआई एमएल के नेता, कार्यकर्ता और समर्थक जेल में डाल दिये गए। सिर्फ पश्चिम बंगाल में 17787 कैदी थे, जिनमें से 12016 नौजवान थे और 1399 लोग 18 साल से कम आयु के थे। नक्सलियों के प्रति भय का यह आलम था कि 1970-

72 के बीच जेल के अन्दर निशस्त्र नक्सलियों पर फायरिंग की 20 घटनाएं हुईं। मिदनापुर सेंट्रल जेल में 17 दिसम्बर 1970 को ऐसी ही एक फायरिंग में आठ कैदी मारे गए व 60 घायल हो गए। 21 फरवरी 1971 को बरहामपुर जेल में हुयी फायरिंग में 10 कैदी मारे गए और 62 घायल हो गए। इनमें से कुछ की हालत बहुत ही गम्भीर थी। (सीपीआई माओवादी द्वारा आन्तरिक वितरण के लिए प्रकाशित *लो इन्टेन्सिटी कान्फ्लिक्ट* से, प्रकाशन की तिथि व जगह ज्ञात नहीं)।

<sup>iii</sup> यह बहुत स्पष्ट है कि नक्सल विरोधी ऑपरेशन उन्ही जिलों (पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम, खूंटी, गुमला, बोकारो, गिरीडीह, चतरा, लातेहार, रामगढ़ और हजारीबाग) में चलाए जा रहे हैं जहां के ग्रामीण प्रस्तावित स्टील प्लांट, खनन उद्योग, पावर प्रोजेक्ट, बांध और स्पंज आयरन उद्योगों का विरोध कर रहे हैं। इस लिए यह एकदम स्पष्ट है कि तथाकथित ऑपरेशन ग्रीन हण्ट या नक्सल विरोधी अभियान आदिवासियों व अन्य स्थानीय लोगों की जमीनें खाली करा कर उन्हें कारपोरेट जगत को सौंपने के लिए हैं न कि उन क्षेत्रों से माओवादियों को खदेड़ने के लिए। ऐसा लगता है कि राज्य माओवादियों के नाम पर कारपोरेट घरानों की सेवा कर रहा है। और शांति निर्माण की बजाए सरकार राज्य में असुरक्षा की भावना पैदा कर रही है। -झारखण्ड स्थानीय पीपुल्स फ्रंट द्वारा दिनांक (सन्दर्भ: सरकार/025/2010) 19.3.2010 को केन्द्रीय गृहमंत्री पी चिदम्बरम के नाम भेजे गए खुले पत्र से।

<sup>iv</sup> चार्जशीट में उद्धृत होना जिन्दगी का अच्छा अनुभव नहीं है। कोबाड गांधी के खिलाफ चार्जशीट में मेरा नाम उद्धृत किया गया है जिसे दिल्ली पुलिस की स्पेशल सेल ने दिल्ली के तीस हजारी कोर्ट में मिस कावेरी बावेजा की कोर्ट में दिनांक 18.2.2010 को एफआईआर नं 58/09 दिनांक 20.9.2009, दायर की। फिर भी चार्जशीट में मेरा सन्दर्भ न ही अवास्तविक है न ही गलत। यह उनका इरादा है या यूँ कहें कि अधिकारियों द्वारा गलत और गैरकानूनी की उनकी अपनी धारणा है जो उन्होंने इसके साथ जोड़ दी है... मुद्दा यह है। यह मेरी धारणा नहीं बल्कि अधिकारियों की धारणा है जो उन्होंने इसपर आरोपित की है और जिसने यूएपीए के घिनौने चरित्र को उजागर कर दिया है। चार्जशीट कहता है "पीयूडीआर के मिस्टर गौतम नवलखा ( गृहमंत्रालय इतने साल निगरानी रखने के बावजूद मेरे नाम की स्पेलिंग सही नहीं लिख सका) सीपीआई माओवादी के काफी समर्थन में हैं और वे कोबाड गांधी से दिल्ली और बम्बई में उनकी गिरफ्तारी से पहले कई बार मिल चुके हैं। और वर्तमान में वे उनसे दिल्ली के तिहाड़ जेल में भी मिल चुके हैं। (पीपी-15)" । 'सीपीआई माओवादी के काफी समर्थन में हैं' और 'उनसे कई बार मिले', यह चार्जशीट में कई बार इस लिए आया है क्योंकि इसे 'गैर कानूनी' समझा गया। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि आपने एक राजनीतिक पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिया, उसके द्वारा अपनी विचारधारा के प्रचार-प्रसार पर रोक लगा दी और उस संगठन व उसके सदस्यों को गैरकानूनी व आतंकवादी घोषित कर दिया तो आप उस चीज़ का भी अपराधीकरण कर देते हैं जो सामान्य और वैधानिक हो। यदि कानून कहता है कि प्रतिबन्धित संगठन के तीन लोगों द्वारा भी की जाने वाली बैठक गैरकानूनी है तब वे किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीने जाने का औचित्य प्रदान कर देते हैं। प्रतिबन्धित संगठन की सदस्यता एक अपराध है। अतः प्रतिबन्धित संगठन के सदस्यों से मिलना-जुलना भी गैर कानूनी हो जाता है। इन धाराओं के साथ ऐसे कानून जुड़े रहते हैं जो दोषी व्यक्ति की कीमत पर पुलिस व प्रोसीक्यूटर की ताकत को काफी बढ़ा देते हैं। और इसी तरह से सुबूतों के इकट्ठा करने, उनकी तुलना करने व उनका इस्तेमाल करने के वर्तमान मापदण्ड को और ढीला बना सकते हैं।

<sup>v</sup> मैं दो उदाहरण देता हूँ- 8 फरवरी को रिट पिटीशन (क्रिमिनल) नं.-103,2009 पर अपना आदेश सुनाते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सम्बो सोदी सहित गायब 12 आदिवासियों को फरवरी 15 2010 को कोर्ट के सामने पेश किया जाए। यह केस उनसे सम्बन्धित था जिन्होंने 1 अक्टूबर 2009 को गोम्पद गांव में एक नरसंहार के गवाह थे और खुद भी इसके शिकार हुए थे। 2 जनवरी 2010 से सम्बो सोदी गायब थी। सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर जब उसे छत्तीसगढ़ पुलिस द्वारा इलाज के लिए दिल्ली लाया गया तो किसी को भी उससे मिलने नहीं दिया गया। यहां तक कि उसके वकील को भी नहीं। तब कोर्ट ने आदेश दिया कि बिना पुलिस की उपस्थिति के उससे उसके वकील को मिलने दिया जाए। इसके बाद वह एक बार फिर गायब हो गयी। इसके प्रत्युत्तर में 29 जनवरी 2010 को कोर्ट ने आदेश दिया कि उसे 11 अन्य आदिवासियों के साथ 15 फरवरी 2010 तक वापस दिल्ली लाया जाए। 9 फरवरी को सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया गया कि उनके आदेश के क्रियान्वयन के लिए 8 फरवरी की शाम को 12 में से 7 आदिवासियों को लाने के लिए, हरीराम एसपीओ के मार्गदर्शन में 300 पुलिस पैदल गच्छनपल्ली गयी है। पुलिस टीम 9 फरवरी को सुबह 5 बजे गच्छनपल्ली की ओर रास्ते में पड़ने वाले गांव गुरखा पहुंची जहां उन्हें एक बारूदी सुरंग का सामना करना पड़ा और जिसमें एसपीओ हरीराम ने अपने दोनों पैर खो दिए। और एक अन्य पुलिसवाला घायल हो गया। उसके बाद पुलिस टीम पर माओवादियों ने गोली चला दी। सुप्रीम कोर्ट के सामने तथ्य प्रस्तुत किया गया कि गच्छनपल्ली नक्सल इलाका है। चूंकि यहां युद्ध क्षेत्र में न ही मीडिया को जाने की अनुमति है और न ही सामाजिक कार्यकर्ताओं को जाने की अनुमति है। ऐसे में इस कहानी की स्वतन्त्र रूप से पुष्टि नहीं की जा सकती। हालांकि लोकतान्त्रिक अधिकारों वाले संगठनों की एक फैक्ट फाइंडिंग टीम (दूसरे लोगों के अलावा इसमें शामिल थे- एपीसीएलसी, एचआरएफ, पीडीएफ, पीयूडीआर, सीपीसीएल,

एनपीएमएचआर आदि) ने पाया कि छत्तीसगढ़ के डीजीपी का यह दावा सत्य से कोसों दूर है कि 9 फरवरी को दो एसपीओ मारे गए थे। टीम ने 13 फरवरी 2010 को गोम्पद गांव की यात्रा की। गांव वालों ने कहा कि ऐसी कोई घटना यहां नहीं घटी थी। इसके विपरीत 10 फरवरी को एसपीओ और पुलिस पार्टी ने गोम्पद के निकट गचनपल्ली गांव पर आक्रमण किया और 10 गांव वालों को पकड़ कर दोरनापाल बेस कैम्प में ले गए। गांव के मुखिया कुदियाम लक्ष्मैया ने टीम को बताया कि कादिती मूथाड़ा, उम्र 35 वर्ष, कादिथी वेंकैया, उम्र 25 वर्ष, कुंजाम वीरैया, उम्र 35 वर्ष, कुंजाम चिलखैया, उम्र 32 वर्ष, पारसी वेंकैया, उम्र 25 वर्ष, पारसी वीरैया, उम्र 20 वर्ष, वंजाम धर्मा उम्र 34 वर्ष, मादवी इरमा उम्र 32 वर्ष, ओअसी इदमा उम्र 30 वर्ष, सोदी पोदियाल उम्र 45 वर्ष को एसपीओ जबरदस्ती अपने साथ ले गए और तब से उनके बारे में कोई जानकारी नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ प्रशासन केन्द्रीय गृहमंत्रालय और इसकी विभिन्न एजेंसियों से मिला हुआ है। और यह सत्य को छुपाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं।

यही अन्त नहीं है। 6 फरवरी 2010 को सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक टीम के साथ मां दन्तेश्वरी स्वाभिमान मंच के सदस्यों ने अशिष्टता की और उन्हें दन्तेवाड़ा में वनवासी चेतना आश्रम के हिमांशु जी द्वारा बुलायी गयी पदयात्रा में भाग लेने से रोक दिया। इस संगठन के इन्हीं सदस्यों ने वनवासी चेतना आश्रम पर आक्रमण किया और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ अभद्रता करते हुए उनपर अण्डे और पत्थर फेंके। एक दलाल मीडिया ने इन सबका कर्तव्यपूर्ण तरीके से प्रसारण किया। और इसे इस रूप में दिखाया कि यह माओवाद समर्थक सामाजिक कार्यकर्ताओं के खिलाफ आदिवासियों का गुस्सा था। तथ्य यह है कि 6 जनवरी को सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हुए आक्रमण की अगुआई सोयम मुक्का कर रहा था। सोयम मुक्का मार्च 2008 में एक आदिवासी लड़की बलात्कार का आरोपी है (केस नं. 84/09, 2009) और उसका केस कोण्टा के प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में चल रहा है और वह भगोड़ा घोषित है। यह सब छत्तीसगढ़ पुलिस की पूरी जानकारी में घटित हुआ जो यह दावा करती है कि वह 8 बलात्कार के आरोपियों को खोजने में असमर्थ है। इन सब चीजों से राज्य सरकार, पुलिस प्रशासन और केन्द्रीय गृहमंत्रालय की भूमिका संदेह के घेरे में आ जाती है। यह भी साफ है कि राज्य की संस्थाएं उसकी एजेंसियां और कारपोरेट मीडिया बलात्कारियों, हत्यारों व लुटेरों को संरक्षण देते हैं। और वे कभी नहीं चाहते कि सच जनता के सामने आए।

यह सभी आवार्जों को चुप कराने का एक सचेत प्रयास है। और यह युद्ध क्षेत्र से आने वाले किसी भी स्वतन्त्र विचार को जनता के सामने नहीं आने देना चाहता वहीं दूसरी ओर यह बलात्कारियों, हत्यारों, लुटेरों को संरक्षण देता है और जहां तक संवैधानिक लोकतन्त्र का सवाल है इस 'गन्दे युद्ध' या 'पुलिस ऐक्शन' से जिन्दगी के प्रति एक गम्भीर खतरा पैदा हो जाता है।

<sup>vi</sup> दक्षिणी बस्तर डिवीजन: पितुरी (विद्रोह); पश्चिम बस्तर डिवीजन: मिदांगुर (फायरप्लेस); दरभा डिवीजन: मोइल गुदरम (तूफान); गढ़चिरौली का उत्तर और दक्षिण डिवीजन: पोद्धू (सूरज); माड और उत्तरी बस्तर संयुक्त डिवीजन: भूमकाल (भूकम्प); पूर्वी बस्तर डिवीजन: भूमकाल संदेश (विद्रोह का संदेश) के अलावा जनताना सरकार एक पत्रिका 'जनताना राज' के नाम से निकालती है। पार्टी अपनी तरफ से 'वियूखा' निकालती है, इसका सैन्य कमान 'पादियोरा पोल्लो' निकालती है। चेतना नाट्य मंच 'झंकार' निकालती है। और इस तरह कई अन्य पत्रिकाएं भी निकलती हैं। गाना गाने वाले बहुत से समूह भी यहां एक सामान्य बात है।

<sup>vii</sup> जमुई नरसंहार में 12 लोग मारे गए। सभी आदिवासी थे। इनमें महिलाएं और बच्चे भी शामिल थे। इसमें 50 लोग घायल हुए। यह घटना बिहार के जमुई जिले में फुलवरिया कोरसी गांव में 17 फरवरी को घटी। और कहा जाता है कि इसे सीपीआई माओवादी ने अंजाम दिया। कहा जाता है कि यह नरसंहार बदले की भावना से किया गया। जहां एक फरवरी को 8 माओवादी कैडर बन्धक बना कर पुलिस द्वारा मार दिये गये थे।

<sup>viii</sup> 20 नवम्बर 2009 को झारखण्ड के पश्चिम सिंहभूम जिले के मनोहरपुर रेलवे स्टेशन के निकट सीपीआई माओवादियों के सशस्त्र कैडरों ने टाटा बिलासपुर पैसंजर ट्रेन के 8 डिब्बों को पटरी से उतार दिया। जिसमें 2 लोग मारे गए। इसमें एक दो साल का बच्चा भी शामिल था। तथा 51 लोग घायल हुए। गाड़ी को पटरी से उतारने के लिए डेटोनेटर का प्रयोग किया गया। और यह 19-20 नवम्बर को आयोजित दो दिवसीय बंद के दौरान घटित हुआ। एक स्थानीय माओवादी नेता के अनुसार वे अपने एक गिरफ्तार नेता को कोर्ट में प्रस्तुत किये जाने की मांग कर रहे थे। सीपीआई माओवादी के बिहार-झारखण्ड-उड़ीसा रीजनल कमिटी के सचिव समर जी ने कहा कि यह एक 'गलती' है जो नए भर्ती लोगों के 'अतिउत्साह' के कारण घटी।

<sup>ix</sup> दक्षिण एशिया में अनुमानतः 750 लाख हथियार हैं। इनमें 630 लाख नागरिकों के पास हैं। ज्यादातर हथियार भारत और पाकिस्तान में हैं। (क्रमशः 400 लाख और 200 लाख)। यहां हथियारों का स्थानीय उत्पादन भी है। अतिरिक्त 30 लाख हथियार (?) नेपाल व श्रीलंका में नागरिकों के

---

पास है। यानी नागरिकों के पास सेना, पुलिस, और विद्रोहियों के कुल हथियारों से ज्यादा हथियार हैं। देखिए, [इन्टरनेशनल ऐक्शन नेटवर्क ऑन स्माल आर्म्स \(IANSA\)](#)

<sup>x</sup> उत्सा पटनायक का पेपर ' "[A Critical Look At Some Propositions on Consumption and Poverty](#)" जरूर पढ़ना चाहिए। पीयूसीएल के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डा. विनायक सेन ने 13 मार्च 2010 को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में छठे आईजीखान मेमोरियल लेक्चर के अवसर पर कहा था कि माओवादियों के विरुद्ध में कार्यवाई आदिवासी क्षेत्रों में कुपोषण की समस्या को और गहरा करेगी। उनके अनुसार कुपोषण सरकार की पहली चिन्ता होनी चाहिए। 18.5 से कम बॉडी मास इंडेक्स वाले व्यक्ति को कुपोषण से ग्रस्त कहा जाता है। राष्ट्रीय पोषण मॉनिटरिंग ब्यूरो के अनुसार भारत में 33 प्रतिशत वयस्कों का बीएमआई 18.5 से कम है। यदि आप इसे अलग-अलग करेंगे तो आप पाएंगे कि अनुसूचित जनजाति में 50 प्रतिशत लोगों का बीएमआई 18.5 से कम है। या वे कुपोषण के शिकार हैं। डब्ल्यूएचओ का कहना है कि यदि किसी समुदाय में 40 प्रतिशत जनसंख्या का बीएमआई 18.5 से कम है तो वह अकाल की स्थिति में है। इस मापदण्ड पर भारत में कई समुदाय अकाल जैसी स्थिति में हैं। उड़ीसा की 40 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण का शिकार है, वह भी इसी श्रेणी में आता है।

विनायक के अनुसार माओवादियों के विरुद्ध सैन्य अभियान और आदिवासियों के विस्थापन से स्थितियां और बदतर होंगी। सरकार बड़ी मात्रा में जनता को उन संसाधनों से बेदखल कर रही है जिनके आधार पर वे अब तक ज़िन्दा थे। सरकार द्वारा सामूहिक क्षति जैसे शब्द बहुत खतरनाक है क्योंकि माओवादी के सिर पर यह नहीं लिखा होता कि वह माओवादी हैं। विनायक सेन की इस स्थापना पर भी हमें गौर करना चाहिए।

<sup>xi</sup> वक्तव्य कहता है कि: " 1947 में सत्ता हस्तांतरण के बाद के बाद से एक साल भी ऐसा नहीं बीता जब भारत सरकार ने अपने ही लोगों के खिलाफ युद्ध न चलाया हो। तेलंगाना विद्रोह (1946-51) के दमन से शुरू होकर जम्मूकश्मीर के खिलाफ युद्ध, नागा जनता के खिलाफ, मणिपुरी जनता के खिलाफ व असम के खिलाफ यह लगातार युद्ध करती रही है। नागरिक स्वातन्त्र्य-पीयूडीआर सहित बहुत से लोकतान्त्रिक अधिकार संगठन ने अपनी फैक्ट फाइंडिंग में इस तथ्य को उजागर किया है कि इस तरह के युद्ध/सशस्त्र संघर्ष 'गन्दे युद्ध' का रूप ले लेते हैं जहां झूठी मुठभेड़, हिरासत में हत्या, गायब कर देना मोर्टर फेंकना, घेराबन्दी करके खोजबीन अभियान चलाना, गैर कानूनी हिरासतमें रखना, यातना देना और बलात्कार करना आम बात हो जाती है।